सर्वदेव वन्दिता भगवती श्रीसीताजी

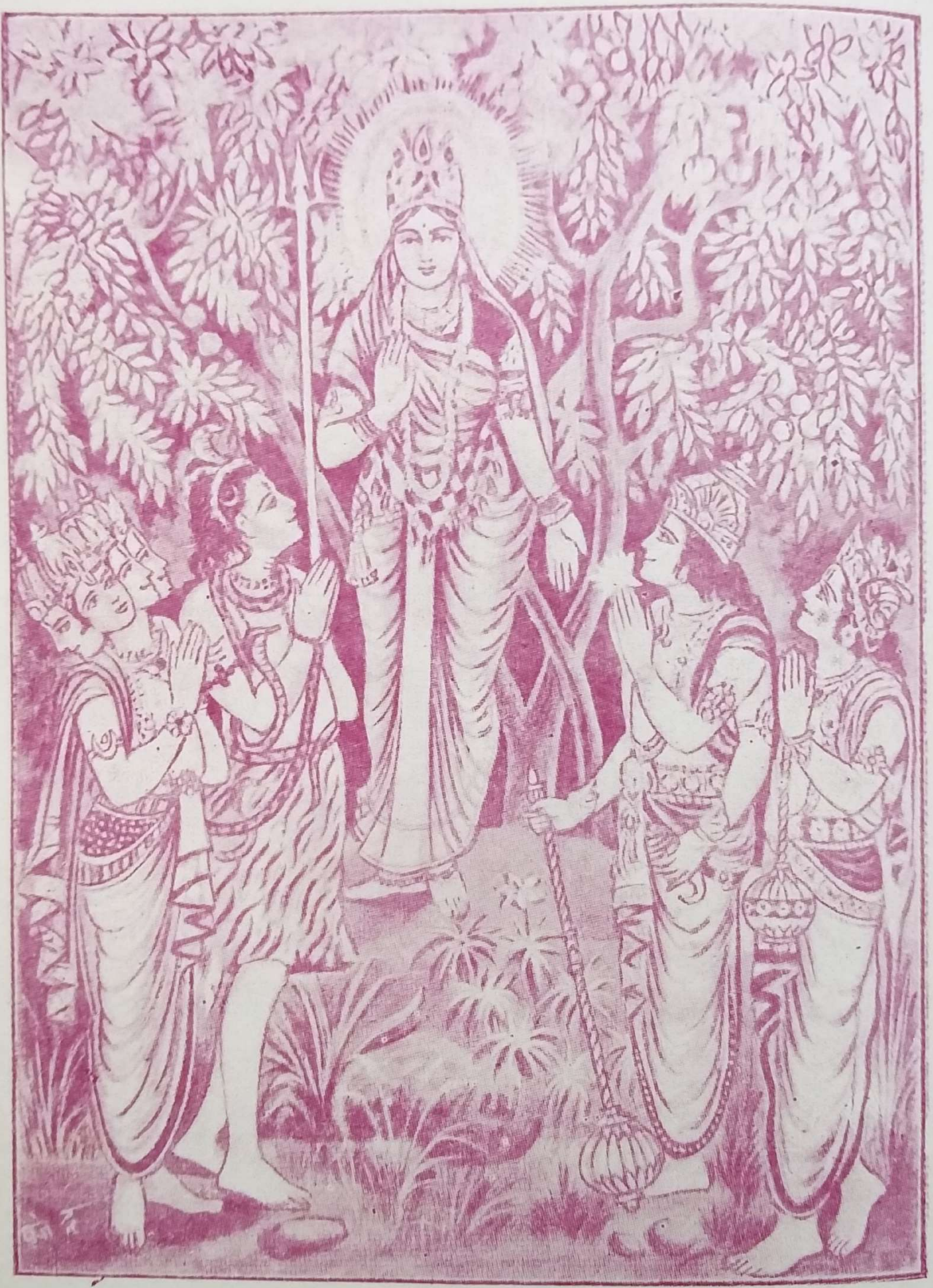

नीलाम्भोजदलाभिरामनयनां नीलाम्बरालङ्कृतां गौराङ्गीं शरदिन्दुसुन्दरमुखीं विस्मेरबिम्बाधराम् ।
कारुण्यामृतवर्षिणीं हरिहरब्रह्मादिभिर्वन्दितां ध्यायेत् सर्वजनेप्सितार्थफलदां रामप्रियां जानकीम् ॥

Scanned by CamScanner

श्री रामः शरणं मम"

"श्री जानकी-स्तवराज,,

मूल- तांध्याये स्तवराजेन प्रोक्तरूपां परात्पराम्।
आह्लादिनीं हरेः कांचिच्छक्तिं सात्वत-सेविताम् ॥१॥

अन्वय- (अहं) प्रोक्तरूपाम् परात्पराम् आह्लादिनीम् सात्वतसेविताम् हरे कांचित् शक्तिम् स्तवराजेन ध्याये।

अनुवाद- मैं (श्रुति स्मृति पुराणादि में) वर्णित स्वरूप वाली, पर से भी पर आनन्द-स्वरूपिणी, सन्तजन सेवित, हरि की उस किसी शक्तिका इस स्तवराज द्वारा ध्यान करता हूँ।

पद्यानुवाद-

आह्लादमयी सात्वतसेव्या; वेदों में गीत कीर्तिवाली।
श्री हरि की किसी शक्तिका; मैं करता हूँ ध्यानभाग्यशाली॥
जो परम-परात्पर मोदमयी, जो पराशक्ति अनुभवगम्या।
इस स्तवराज दिव्य द्वारा; कर रहा स्तवन हूँ रम्या॥

विशेष- प्रोक्तरूपाम्- स्तवराजकार, स्तवन के पूर्व प्रोक्तरूपां कहकर श्री राज-किशोरी जू के ऐश्वर्य-वैभव एवं काय बैभव को श्रुति स्मृति एवं पुराणों इतिहासों तथा नाटकों में वर्णित होने का संकेत करते हैं। श्री राजकिशोरी जू के उभय-वैभव वैशिष्ट का निगदन पदे पदे प्रतिभासित हैं यथा

वेदों में- १- इन्द्रः सीतां नि गृह्णातु तां पूषानु यच्छतु। सा नः पयस्वती दहामुत्तरामुत्तरां समांम॥ , ऋग्वेद ४।५७'७ अथर्व० ३।१७।४)
२- घृतेन सीता मधुना समक्ता; विश्वैर्देवैरनुमता मरुद्भिः। सा नः सीते पयसाभ्या-ववृत्स्वोर्जस्वती घतवत् पिन्वमाना॥ अथर्व ३ १७-६ ३- हेमाभयादिभुजयासीत्र लिंकारयानिता श्लिष्टःकमलधारिण्या पुष्टः कौशलजात्मजः (पूर्व रामताप०४- उत्पत्तिस्थिति संहारकारिणी सर्व देहिनाम्। सा सीता भवति ज्ञेयामूल प्रकृति संज्ञिता॥ (रामोत्तरतापनी
५- जनकस्य राज्ञः सह्मनि सीतोत्पन्ना सा सर्वपराऽऽनन्दमूर्तिः गायन्ति मुन योऽपिदेवाश्च कार्य कारणभ्यामेवपरा तथैब कार्यकारणर्थो शक्तियस्य ।:विधात्री श्री गौरीणां सैव कर्त्री रामानन्द स्वरूपिणी सैव जनकस्य योगफलमिव भाति (अर्थववेदपरिशिष्ट की श्रुति) ६- अर्वाचो सुभगे भवसीते वन्दामहेत्वा। यथा नःसुभगा सति यथा नः सुफलासति॥ (अथर्व०४,५७,६) उपनिषदों मे-१-निमेषोन्मेष सृष्टि स्थिति संहारातिरोधानानुग्रहादि सर्वशक्तिसामर्थ्यात्साक्षाच्छक्तिरिति गीयते। श्री सीतोपनिषद) २-भूर्भुवःस्वःसप्तदीपा वसुमतो त्रयोलोका अन्तरिक्षं सर्वेत्वयि नियसन्ति आमोदः प्रमोदो विमोदः सम्मोदः सर्वास्त्वंात्रि संधत्से। आञ्जनेयाय ब्रह्मविद्या प्रद

धामित्वां सर्गे वयं प्रणममहे प्रणममाहे(श्री मैथिली महोपनिषद) काव्येतिहास में—वेदोपबृंहण-रूप इतिहासोत्तम आदिकाव्य श्री मद्वाल्मीकि रामायण में तो आदिकवि की घोषणा ही हैं कि यह समस्त महाकाव्य" सीतायाश्चरितं महत्" हैं कुछ प्रमाण—
१- अपराधिनी राक्षसियों को अभय प्रदान करती हुयी श्री जू श्री हनुमान जी से सुन्दरकाण्ड में कहती हैं—पापानां वां शुभानां वा वधार्हाणां प्लवङ्गम । कार्यं कारुण्यमार्येण न कश्चिन्नापराध्यति ।। एवमुक्ता हनुमता वैदेही जनकात्मजा, उवाच धर्म सहितं हनुमन्न यशास्विनी । राज्य संश्रय वश्यानां कुर्वतीनां पराज्ञया विधेयानां च दासीनां कः कुप्येद वानरोत्तम । श्री राजकिशोरी जू ने कपोत का दृष्टान्त देते हुए आगे कहा कि अयं व्याघ्र समीपे तु पुराणं धर्म संहितः ऋक्षेण गीतः श्लोकों में तन्निबोध-प्लवङ्गम् । न परः पापमादत्ते परेषां पाप कर्मणाय । समयो रक्षित व्यस्तु सन्तश्चारत भूषण ।। श्री हनुमानजी को चिववध प्रतिज्ञा को सुनकर श्री जू ने उनकी इस प्रकार रक्षा की । २- भर्त्सितामपि याचध्वं राक्षस्यः कि विवक्षया राघवाद्धि भयं घोरं राक्षानामुपस्थितम् । प्राणिपात प्रसन्नाहि मैथिलो जनकात्मजा । अलमेषा परित्रात राक्षस्यो महतो भयात् ।। राक्षसियों का यह विचार स्वगोष्ठी गत ही रह गया श्री जू ने स्वयं ही उदघोप कर दिया– ततः सा ह्रीमती वाला भर्तुर्विजय हर्षिता अवोचद्यादित्तथ्यं भवेयं शरणं हिवः । इस प्रकार सर्वत्र ही महानुभावों ने श्री विदेहराजतनया जू के मंगलमय स्वरूप की चर्चा की इसी लिए ग्रन्थकार प्रारम्भ में ही कहते हैं कि श्री राजकिशोरी जू प्रोक्तरुपा हैं ।

परात्परा—भगवती श्री जानकी पर से भी पर तत्व स्वरूपा हैं । वागर्थ एवं जल-वीचि की तरह श्री सीता और श्री रामतत्व परस्पर अभिन्न है । समस्त आदिकाव्य में दुग्ध में घृत की भांति श्री राम परत्व में श्री सीता-परत्व अन्तर्निहित हैं ।

आह्लादिनीम्-प्रभु की सन्धिनी संवित त्वय्येका सवसंस्थितो-विष्णु पुराण(१-१२-६६)

मूल- **कीदृशः स्तव राजोऽयं केन प्रोक्तः सुरेश्वर ।**
कथ्यतां कृपया देव, जानकीरूप-बोधकः ।।२।।

अन्वयः- सुरेश्वरः! जानकी रूप बोधकः अयम् स्तवराजः कीदृशः केन प्रोक्तःदेव ! कृपया कथ्यताम् ।

अनुवाद- हे सुरों के स्वामी! श्री मिथिलेशराजनन्दिनी जू के स्वरूप का बोध कराने वाला यह स्तवराज कैसा हैं ? तथा यह किसके द्वारा कहा गया हैं ? हे देव कृपा करके इसका वर्णन करें ।

पद्यानुवादः- **अत्रि ने पूछा हे संकर्षण हे देव सुरेश्वर बतलावें ।**
कैसा यह स्तवराज इसे; किसने था गाया समझावें ।।
यह श्री सीता स्वरूप बोधक; इसको सम्पूर्ण सुना दीजे ।
होगी यह परम कृपा प्रभु की; अमृतरस दान दया कीजै ।।२।।

Scanned by CamScanner

विशेष:- मूलतः यह स्तवराज भूतमनभावन भगवान महेश्वर के द्वारा गाया गया है। स्तोत्रों की परम्परा के अनुसार इसके श्रवण की जिज्ञासा भगवती श्रुति करती है और इसका वर्णन संकर्षण स्वयं शेष करते हैं। श्रुति एवं शेष की वार्ता के रुप में महर्षि अगस्त ने इस लीला रहस्य का अपनी संहिता में गायन किया।

मूल- ब्रवीमि स्तवराजं ते; श्री-शिवेन प्रभाषितम्। श्रुतं श्री वक्त्रतो दिव्यं; पावनानां च पावनम् ॥३॥

अन्वय:- श्री वक्त्रतः श्रुतम् श्री शिवेन प्रभाषितम् दिव्यम् पावनानाँ च पावनम् स्तवराजम् ते ब्रवीमि।

अनुवाद:- (श्री राघवेन्द्र के) श्री मुख से सुना हुआ एवं श्री शिव जी के द्वारा कहा गया दिव्य एवं पवित्रों को भी पवित्र करने वाले, इस स्तवराज को तुमसे कहता हूं।

पद्यानुवाद:- बोले संकर्षण सुनो देवि; श्री महाशम्भुकृत गीत अहा श्री राघवेन्द्र श्री मुख-वर्णित; यह स्तवराज सु दिव्य महा॥ पावन को भी पावन ता दे; गा रहा बड़ा स्तवन-मंत्र। सुनना हो संयत सारभूत; रस-सिद्धि प्रदाता परमतंत्र ॥३॥

विशेष:- मूल स्तवन में श्री वक्त्रतः शब्द से श्री राघवेन्द्र के श्री मुख से वर्णित यह अर्थ लिया गया हैं क्योंकि आगे के श्लोक संख्या ७-८ में स्वयं श्री रघुनन्दन के द्वारा इस स्तवराज के द्वारा श्री स्तवन को बात का निर्देश स्पष्ट हैं।

मूल- चकाराराधनं तस्य मंत्रराजेन भक्तितः। कदाचिच्छ्रीशिवो रुपं ज्ञातुमिच्छुहरे परम् ॥४॥

अन्वय:---हरेः परम् रूपम् ज्ञातुम् इच्छुः श्री शिवः कदाचित् भक्तितः तस्य मंत्रराजेन आराधनम् चकार।

अनुवाद:- हरि (श्री राघवेन्द्र) के सर्वोत्कृष्ट-रूप को जानने की इच्छा रखने वाले, श्री शिव ने किसी समय, भक्तिभाव भावित होकर उनका (श्री राम का) मन्त्रराज के द्वारा आराधन किया।

पद्यानुवाद:- श्री शिवशङ्कर ने किसी समय अत्यत, भक्ति भावीत उर से। श्री मन्त्रराज द्वारा मंजुल; आराधन किया शास्त्र सुर से॥ श्री हरि का सर्वोत्कृष्ट रुप; भावना भाव्य मैं पा जाऊं। इस भव्य भाव में हो निमग्न; सोचा कैसे रस सरिन्हाऊं॥४॥

Scanned by CamScanner

विशेषः-"हरेः परमरूपम्", से यहाँ तात्पर्य व्यापक विराट निर्गुण निर्विकार, विभु एवं कूटस्थ स्वरूपों से नहीं, बल्कि इन सभी का परम कारण, रसिक-भक्तों के द्वारा आस्वाद्य स्वरूप से है। क्योंकि इस स्वरूप के ज्ञान का प्रयास 'भक्तितः किया जा रहा है। इस रूप का निरूपण तर्क शास्त्रियों के व्यायाम से साध्य नहीं है।

मूल- दिव्य वर्षशतं वेदविधिना विधिवेदिना। जजाप परमं जाप्यं; रहस्ये स्थित चेतसा ॥५॥

अन्वयः- रहस्ये, विधिवेदिना; स्थितचेतसा, वेद-विधिना दिव्य वर्षशतम्, परम जाप्यम् जजाप।

अनुवाद :- एकान्त में, विधि को जाननेवाले (श्री शिवजी ने) स्थिरचित होकर वेद की विधि के अनुसार, दिव्य सौ वर्ष परमजाप्य (मंत्रराज) का जप किया।

पद्यानुवाद;-तब उन विधिज्ञ ने स्थिर चित; वेदों की वर्णित विधि द्वारा। शत -दिव्य- वर्ष तक किया मुदित उस परम जाप्य का जप प्यारा ॥ होकर एकान्त देश वासी; काशीवासी वे अविनासी। मन्त्राराधन में लीन हुये; मंत्रार्थ-विज्ञवर -विश्वासी

विशेषः- 'विधि-वेदिना 'शब्द का अर्थ साकेतवासी सन्त १००८ पं श्री रामवल्लभा शरण जी महाराज, "आचार्य से सीखी हुयी विधि द्वारा 'करते हैं। मंत्र,वेद-विदित हो और आचार्योपदिष्ट हो, तभीं उसका अनुष्ठान सफल होता है। श्री शिव जी ने मंत्र का आराधन, वेद-विधिना' अर्थात् वेद की विधि से आचार्यानुमोदन प्राप्त कर किया, यह भाव परिलक्षित होता है।

प्रसन्नो भूत्तदा देवः श्रीरामः करुणाकरः। मन्त्राराध्येनरूपेण, भजनीयः सतां प्रभुः॥६॥

अन्वय- तदा सतां भजनीयः प्रभुः करूणाकरः श्रीरामः देवः मंत्राराध्येन रूपेण प्रसन्नः अभूत॥ अनुवाद- तब सज्जनों (भक्तों या श्री वैष्णव जनों) से भजनीय समर्थ, करुणा निधान देव श्री रघुनन्दन मंत्राराध्यरूप से प्रसन्न हुये॥

हो गये प्रसन्न दयालु देव करूणाकर श्री मद्रघुनन्दन। आराध्यरूप मंत्रों वाले भजनीय भक्त जन उर चन्दन ॥ बोले हे भोला नाथ सुना मैं हूँ प्रसन्न बतलाता हूँ। रसिकों को दिव्य दृष्टि पथ में मैं किस प्रकार से आता हूँ॥

विशेष -"मंत्राराध्येन रूपेण "से प्रभु प्रगट हुये। यद्यपि जहाँ कामना है वहाँ बिधि है। श्री शिव जी की तथा कथितकामना यद्यपि सात्विक है। फिर भी मंत्रानुष्ठान से प्रभु प्रगट हुये। ग्रन्थकार का मन माना मचल उठा और उन्होंने निर्धोष किया कि

मन्त्रों के द्वारा आराध्य तो यह नील सुन्दर वपुष ही हैं। अन्य रूपों के दर्शन निमित्त मन्त्राराधन तो श्रम मात्र ही हैं। श्री राम जी ने कहा कि–

दृष्टुमिच्छसि यद्रूपं मदीयं भावनास्पदम। आह्लादिनीं परांशक्ति स्तूयाः सात्वत सम्मताम् ॥७॥

अन्वयः- यतमदीयं भावनास्पदं रूपं दृष्टुम् इच्छसि सात्वत सम्मतां में आहलादिनीम् परां शक्ति स्तूयाः ॥ अनुवाद- जो भव्य भावनास्पद मेरा, हैं रूप देखना चाहे रहे। जिसकी शुभ दर्शन इच्छा के वह पावन प्रेम प्रवाह रहे ॥ उसके अवलोकन हेतु परम आहलादिनि पराशक्ति भूपा। सात्वत जन-सेवित देवी का आराधन करें भाव रूपा ॥ विशेष- भावनास्पदं रूपं से तात्पर्य पंचरसों के क्रम से भावनीय स्वरूप से है। रसिकाचार्य शान्त, दास्य, वात्सल्य, सख्य एवं श्रृंगार रसों के क्रम से किसी भी रस विशेष में स्थित होकर प्रभु के जिस स्वरूप की भावना करते हैं। वह स्वरूप ही भावनास्पद है। उस स्वरूप का दर्शन श्री जानकी जू की कृपा के विना होना सम्भव नहीं है। यथा- मिथिला विन नाते नहिं दर से। पढ़े लिखे समुझे समुझाये पोथी लादे खर से ॥७॥

तदाराध्यस्तदारामस्तदाधीनस्तया विना। तिष्ठामि न क्षणं शंभो जीवनं परमं मम ॥८॥

अन्वयः- हे शम्भो ! (अहम्) तत् आराध्यः तत् आरामः तत आधीनः तया विना क्षणम् न तिष्ठामि। मम परमं जीवनं (अस्ति) ॥ अनुवाद—हे शिव जी ! मैं उन्हीं (श्री जानकी जू) सहित ही आराध्य हूँ। वही मेरी आराम भूता हैं। उनसे रहित मैं क्षण भर भी सुख से नहीं रह सकता। मैं उन्हीं के आधीन हुं। क्यों कि वह मेरी परम जीवन हैं। हे शम्भु सदा आराधित मैं उनपराशक्ति के संग सत्य। मेरी वे महारामभूता उनके सँगथितिः मदीय नित्य ॥ आधीन सदा ही मैं उनका मेरी वे सदा प्रान-भूता। क्षणमपि रह सकता हूं न कभी उनसे विहीन किसको छूता ॥ विशेषः- रस निकुंज देश में सर्वेश्वर श्री रघुनन्दन को सर्वदा प्रिया–प्रेमवश्यता का स्वरूप स्पष्ट है। अन्यत्र भी श्री राघव कहते हैं – कि–पूर्णेन्दु सुन्दरमुखी चपलाय-ताक्षी, सा चेत कृपां न कुरते मयि राजपुत्री। तत्किं फलं प्रवरया ममराजलक्ष्म्या, किम्बानया मृदुल यौवन सम्पदा च ॥

(श्री जानकी गीतम्)

इत्युक्त्वादेवदेवेश वशीकरणमात्मनः। पश्यतस्य रूपं स्वमन्तर्धानं दधौप्रभुः॥९॥

अन्वयः- देवदेवेशः प्रभुः आत्मनः वशीकरणम, इत्युक्त्वा तस्य शिवस्य पश्यतः स्वम.

रूपम् अन्तर्द्धानं दधौ ।। अनुवाद-देवादि देवेश सर्व समर्थ प्रभु (श्री राम जी) ने अपने आत्मवशीकरण का उपाय इस प्रकार बतलाकर, उन शिव जी के देखते देखते ही अपने उस स्वरूप को अन्तर्हित कर लिया ।।

कहकर यों वशीकरण निजका वे देवों के देवेश परम् । श्री राम परमकरुणासागर, योगीन्द्र वृन्द के ध्येयचरम् ।। देखते देखते हो उनके, कर अन्तर्द्धान स्वरूप लिया । शंकर मानस को विद्युत सा, देकर प्रकाश जागरित किया ।। विशेष:- देवदेवेश: कहकर ग्रन्थकार ने श्री राघवेन्द्र का परत्त्व प्रतिपादित किया यथा -वालमीकीये- ब्रह्मास्वयम्भूश्चतुराननो वा त्रातुम न सकता युधिराम बध्यम् । इस प्रकार श्री राम जी सब देवताओं के स्वयं सिद्ध ईश हैं ।।

श्रुत्वारूपं तदा शंभुः तस्याः श्री हरि वक्त्रतः । अचिन्तयत्समाधाय मनःकारण मात्मनः ।। १० ।।

अन्वय:—तदाशंभु: तस्या: (श्री जानक्या:) रूपं श्री हरि वक्त्रत: श्रुत्वा आत्मन: कारणं मन: समाधाय, अचिन्तयत् ।। अनुवाद—तब श्री शंकर जी ने उन श्री मिथिलेश-नन्दिनी जू के रूप को श्री राघव के मुख से सुनकर अपने कारण रूप मन को एकाग्र कर ध्यान प्रारम्भ किया ।।

उन पराशक्ति का श्री मुख से, सुनके स्वरूप मंगलकारी । अपने कारण स्वरूप मन को, केन्द्रित कर बैठे त्रिपुरारी ।। करने लग गये स्वरूप ध्यान, परमाराध्या सुख-कारी का । आह्लादिनि परम कृपा रूपा, रस की रसिका दुखहारी का ।। विशेष- "आत्मन: कारणं मन: व्यक्ति का मन ही उसके सर्वविधि व्यक्तीकरण का कारण है यथा- मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयो:" अत: श्री शिव जी ने उस मन को एकाग्र कर ध्यान करना प्रारम्भ किया ।।

अस्फुरत्कृपया तस्यरूपं तस्याः परात्परम् । दुर्निरीक्ष्यं दुराराध्यं सात्वतां हृदयङ्गमम ।। ११ ।।

आश्रयं सर्वलोकानांध्येयं योगिविदां तथा । आराध्यं मुनि मुख्यानां सेव्यंसं-यमिनां सताम् ।। १२ ।।

अन्वय:- दुर्निरीक्ष्यं सात्वतां हृदयंगमम् सर्वलोकानां आश्रयम् योगिविदाम्ध्येयं, मुनि मुख्यानां आराध्यम् संयिनां सतांसेव्यं, तस्या: (जानक्या:) परात्परं रूपं कृपया तस्य (शिवस्य) अस्फुरत । अनुवाद- दुलर्भ दर्शना दुराराध्या जिनकी आराधना कठिन हैं भक्त जन हृदय निवासिनी सर्वलोकाश्रयभूत योगिवर्य जनों को ध्येया मुनिमुख्यों की

आराध्या, जितेन्द्रियों की सेव्या श्री विदेहराजनन्दिनी जू का परात्पर स्वरूप उन्हीं की कृपा से श्री शिव जी के समक्ष प्रत्यक्ष प्रगट हो गया।

जो दुर्निरीक्ष्य जो दुराराध्य, जो श्री वैष्णव जन भावनीय। जो सर्व लोक आश्रय भूता, योगीन्द्रध्येय मुनि माननीय।। संयमियों की सन्तत सेव्या, जो रूप परात्पर द्युतिकारी। स्फुरित होगया तब समक्ष, होगये मगन डमरू धारी।।

विशेषः—"दुर्निक्ष्यं दुराराध्यं" कह कर ग्रन्थकार ने श्री जनक राजकिशोरी जू की महामहिमा का संकेत किया। यथा—जासु कृपा कटाक्ष सुर चाहत चितवन सोय। बड़े बड़े देवेन्द्र मुनीन्द्र बृन्द के द्वारा वंदित और आराधित हुई भी जिन श्री जू का दर्शन उन्हें सुलभ नहीं होता। वे श्री राजकिशोरी जी प्रगट हुई। भाव यह है कि यह श्री तत्त्व साधन साध्य नहीं। अपितु कृपैक साध्य है। "दुर्निरीक्ष्य" पद से उनके दर्शन की दुर्लभता एवं दुराराध्य पद से उनकी असाध्यता प्रगट हुई।।१२।

दृष्ट्वाश्चर्यमयं सर्वरूपं तस्याः सुरेश्वरः। तुष्टावजानकीं भक्त्या मूर्तिमतीं प्रभाविनीम् ।।१३।।

अन्वयः—सुरेश्वरः (श्री शिवः) तस्याः (जानक्याः) आश्चर्यमयं सर्व रूपं दृष्ट्वा भक्त्या मूर्तिमतीम् प्रभाविनीं (जानकीम) तुष्टाव।। अनुवाद-सुरेश्वर श्री शिव जी ने उन श्री जानकी जी आश्चर्य पूर्ण सम्पूर्ण रूप को देख कर, मूर्तिमती एवं प्रभाव शालिनी श्री जू को भक्ति पूर्वक स्तुति करने लगे।। यह देख सुरेश्वर श्री शंकर, आश्चर्य पूर्ण श्री अंग सुभग। नख से शिख तक द्युतिमन्त परम, पुलकाये मंगलमय रग रग।। सुषमा वह मूर्तिमती लखते, गूँजे डमरू के नव्य घोष। हो गये प्रार्थना में तत्पर, खुल गये भाव के भव्य कोष।। विशेष-नख से शिख तक आश्चर्य पूर्ण, उनका वह मधुर स्वरूप देख। देवेश्वर उन शिव शंकर के, मुदगये नयन निज भाग्य लेख।। फिर परम भक्ति की परवश्या, उन प्रभामई सुकुमारी का। करने स्तवन पुनीत लगे, इस भाँति विदेह कुमारी का।।१३।। स्तुति–प्रारम्भ—

वन्दे विदेह तनया पद-पुण्डरीक, कैशोर सौरभ समाहृत योगिचित्तम्। हन्तुं त्रितापमनिशं मुनिहंस सेव्यं; सन्मानसालिपरिपीतपराग पुञ्जम् ।। १४।।

अन्वयः—(अहं) कैशोर सौरभ समाहृत योगिचित्तम् त्रितापं हन्तुं अनिशं मुनिहंस सेव्यं सन्मान सालिपरिपीतपराग–पुञ्जम् बिदेहतनया पद–पुण्डरीकं वन्दे।।

अनुवाद—अपने नित्य कैशोर सौरभ से (नित्य नूतन सुगन्ध से) योगिजनों के चित्त को अपहरण करने वाले, त्रिताप अपहरण के निमित्त सर्वदा परमहंस पद प्राप्त मुनियों से संसेव्य, भक्तजनमानस भ्रमरावलि द्वारा पीतपराग वाले (अर्थात भक्तों के मन रूपी

Scanned by CamScanner

भ्रमरों ने जिनके पावन पराग का पान किया है) श्री विदेहराज नन्दिनी जू के चरण कमलों की (मैं शंकर) वन्दना करता हूँ ।।

कैशोर सुसौरभ से सन्तत, जो आहृत करते योगिचित्त । त्रैताप विनाशन हेतु सदा, मुनिहंसजनों के सेव्य वित्त ।। वैष्णव जन मानस भ्रमरों से सन्तत परिपीत पराग पुञ्ज । वन्दन करता वैदेही के ऐसे पद पावन दिव्य कञ्ज ।। विशेष–सम्मानसालि परिपीत पराग-पुञ्जम् कहकर ग्रन्थकार ने श्री जू के पद-पंकजों को रस पराग का परम अधिष्ठान निर्दिष्ट किया । रसिक जन मन भ्रमर तो उस पराग का पान करते ही हैं । स्वयं श्री रसिक शेखर भी इस रस पराग के अनुराग में भ्रमर बन जाते हैं । रसिकों का तो अनुभव सिद्ध सत्य है कि–श्री जनकलली के पदकमल जबलगि उर नहिं बास । राम भ्रमर आवत नहीं तब लौं ताके पास ।।१४।।

पादस्य यावकरसेन तलं सुरक्तं, सौभाग्य भाजनमिदं हि परं जनानाम् ।
युक्तीकृतं सुभजतां तवदेवि नित्यं; दत्ताश्रयं सुमनसां मनसानुरागम् ।।१५।।

अन्वयः—हे देवि ! तव पादस्य तलं, यावकरसेन सुरक्तं हि इदं जनानाम् परम सौभाग्य भाजनम् । सुमनसां नित्यं सुभजतां (तव) दत्ताश्रयं, मनसा अनुरागं युक्तीकृतम् अनुवाद हे देवि ! आपके श्री चरणतल, यावक रंजित होने के कारण अत्यन्त अरुणारे हैं । अवश्य ही यह भक्त जनों के परम सौभाग्य अधिष्ठान हैं । सुन्दर मन से नित्य भजन निरत प्रेमी जन आपके आश्रय प्रदत्त मनके द्वारा उनमें अनुराग करते हैं।। अरुणाभ परम पद के तल की, यावक रसरंजित रम्य कान्ति सौभाग्य सुभाजन भक्तों की अरुणाई देती पुण्य शान्ति ।। सद् भजन निष्ठ जनके मन से, भजनीय चरण पंकज कोमल । मानों अनुराग अरुणिमा से, होगये अरुण तरवे पद तल ।। विशेष-'मनसानुरागम्' श्री राजकिशोरी जू के श्री चरणतल स्वाभाविक ही अरुण हैं । स्तवकार उस अरुणिमा में प्रेमी भक्तों के अनुराग की उत्प्रेक्षा करते हैं । भाव यह है कि यह लालिमा श्री चरणों के अनुरागियों के अनुराग को लाली है जो महावर के रूप में शोभित है । साहित्य में अनुराग का रंग भी लाल माना गया है ।

पादाङ्गुली नखरुचिस्तव देविरम्या; योगीन्द्रवृन्द मनसा विशदा विभाव्या ।।१५।।
त्रैताप क्लान्त्युपशमाय शशाङ्ककान्तिः दोषेण किं समुपयति तुलां युतासा ।।१६।।

अन्वयः—हे देवि ! योगीन्द्र बृन्द मनसा विभाव्या, तव पादाङ्गुली नख रुचिः विशदा, रम्या, किम् दोषेण युत सा शशाङ्क कान्ति, त्रैताप क्लान्त्युपशमाय तुलामि याति (न.तिइत्यर्थः) अनुवाद-हे देवि ! श्रेष्ठ योगियों के मन से सेवित आपके चरणांगुलि नखों की कान्ति स्वच्छ और अत्यन्त सुन्दर है । क्या दोष से युक्त वह चन्द्र कान्ति

त्रिताप विनाशन के वैशिष्ट के सन्मुख कभी भी समानता को प्राप्त हो सकती है। अर्थात् नही ॥ योगीन्द्रबृन्द मानस विभाव्य, पादांगुलि नख की नव्य कान्ति। चन्द्रद्युति कहाँ तुल्य होगी, त्रैताप हर्तृ लख दिव्य शान्ति ॥ विशदा रम्या प्रकाश निलया, जब मंजु छटा छहराती है। शशिकान्ति हो दोषमयी, सकुचाती छिप छिप जाती है ॥ विशेष–'त्रैताप क्लान्त्युपशमाय" भाव यह कि–श्री जू के पद नख में चन्द्र-कान्ति से अधिक, रम्यता, निर्मलता और प्रभा तो है ही दैहिक; दैविक भौतिकतापों के भी उपशमन का जो वैशिष्ट है उसकी तुलना में तो बेचारा चन्द्र कभो आही नहीं सकता "पदनखद्युति विनमित चन्द्रे निजपतिपद परिचरण वितन्द्रे" कहकर सर्वत्र ही पद नखों की कान्ति से चन्द्र को लज्जित कहा गया है ॥

मञ्जीर धीर निनद कलहंसकाली, हा साय सा भवति भावयति त्वदीय।

किञ्चापरं रसिकमौलि मनोनियन्तु; दृष्टं मया परमकौशलमत्र तस्य ॥१७॥

अन्वयः–हे देवि ! सा कलहंसकाली, त्वदीयं मञ्जीर धीर निनदं भावयदि हासाय भवति। रसिकमौलि मनः नियन्तुम् किञ्च अपरम् अत्र मया तस्य परम कौशलम् दृष्टम् ॥ अनुवाद–हे देवि ! सुन्दर हंसों की पंक्ति, आप के नूपुरों के गम्भीर ध्वनि की समानता करती हुई उपहास की पात्र होती है, रसिक मौलि (श्री रघुनन्दन) के मनका नियमन रूप कृत (इन नूपुरों में) यहाँ मैने कुछ और परम चातुर्य देखा ॥ करने चलती कलहंस पंक्ति मंजीर धीर ध्वनि की समता। तव सहज हास्य योग्या होती, उसकी समता की अक्षमता ॥ कर लेती रसिक मौलि मनका, इसकी ध्वनि सहज नित्य नियमन। कलकौशल और लखा इनमें, पायेगो हंस पंक्ति क्या कन ॥ विशेष–'दृष्टं मया परं कौशल मत्रतस्य" भाव यह की हंसों की पंक्ति इन नूपुरों की शुभ्रता में भले ही समता करले, किन्तु इनकी ध्वनि को श्रवण करते ही वह उपहास वन जायेगी। हस पंक्ति की ध्वनि भी यदि रम्य होती, तो भी इनकी ध्वनि में श्री रसिकेश्वर के जो वशीकरण की जो वैशिष्ट है उसकी तुलना ता कदापि हो ही नहीं सकती थो ॥१८॥

सिद्धीश बुद्धिवर रञ्जन गूढ गुल्फौ; पादारविन्दु युगलौ जनतापवर्गौ।

विन्दन्ति ते त्रिभुवनेश्वरि भाव सिद्धिं; ध्यायन्ति ये निखिल सौभगभानु भाजो ॥१८॥

अन्वयः– हे त्रिभुवनेश्वरि ! ये सिद्धीश बुद्धिवर रञ्जन गूढ गुल्फौ जनतापवर्गौ, निखिल सौभग भानु भाजो ते पादारविन्द युगलौ ध्यायन्ति, ते भावसिद्धि विन्दन्ति ॥ अनुवाद–हे तीनों लोकों की स्वामिनि ! जो (व्यक्ति) श्रीराम जो की श्रेष्ठमति को प्रसन्न करने वाले, गूढ़ गुल्फों से युक्त, जनों के (भक्त जनों के) ताप के विनाशक,

Scanned by CamScanner

तथा सम्पूर्ण सौन्दर्य के सूर्यरूप, आपके दोनों चरणारविन्दों का ध्यान करते हैं, वे भाव की सिद्धि को प्राप्त होते हैं ।। जो ताप विनाशक भक्तों के, सिद्धीशबुद्धि रंजनकर्ता । मंजुल गुल्फों से युक्त युगल, पादारबिन्द दुख के हर्ता ।। उन परम सुसौभग भानुरूप, चरणों को जो ध्याया करते । हे हे त्रिभुवन की महाईश, वे भाव सिद्धि पाया करते ।। विशेष-"निखिल सौभग भानु भाजो," पद का अर्थ सन्त श्री गोविन्द दास जी सम्पूर्ण सौन्दर्य के सूर्य श्री राम जी की सेवा में रहने वाले करते हैं । जब कि अनन्त श्री पं॰ श्री रामवल्लभाशरण जी महाराज 'सम्पूर्ण सौन्दर्य के प्रकाश स्थान" यह अर्थ करते हैं । इसी प्रकार जनतापवर्गौ पद की व्याख्या प्रथम सन्त (जनता अपवर्गौ) भक्तजनों के मोक्षरूप करते हैं । जबकि श्री पं० जी महाराज (जनताप वर्गौ) भक्तजनों के ताप विनाशक करते हैं । प्रस्तुत पंक्तियों के लेखक को द्वितीय भाव ही अभीष्ट है ।।१८।।

हेमाभिवर्द्धित विभूषण भूषितं ते; त्रैलोक्य तेज इव मञ्जुल पुञ्ज भूतम् ।
भावस्मि सुन्दरि पदं सरसीरुहाभं, भीताभयप्रदमनन्त मनोभिध्येयम् ।।१९।।

अन्वयः-हे सुन्दरि ! (अहं) हेमाभिवर्द्धित विभूषण भूषितम् त्रैलोक्य तेजइव मञ्जुल पुञ्ज भूतम्, सरसीरुहाभम् भीताभयप्रदम् अनन्त मनोभिध्येयम् ते पदम भावस्मि (भावितुं इच्छामि) ।। अनुवाद-हे सुन्दरि ! (मैं) सुवर्ण रचित विभूषणों से शोभित तीनों लोकों के (पुञ्जीभूत) तेज की भाँति सौन्दर्यमय कमल की सी आभा वाले (संसार शोक) भयभीत प्राणियों के अभय प्रदाता अनन्त (श्री राम जी) के मन के द्वारा ध्येय, आपके युगल श्री चरणों की भावना करने की इच्छा करता हूँ ।। उन हेम भूषणों से भूषित, त्रैलोक्य तेज के पुञ्जभूत । श्रीराघवेन्द्र के मनोध्येय, कमलारुण मंजुल परम पूत ।। भवताप तीव्र के अभयदानि, चरणों को उर में धार रहा । हे सुन्दरि ! उन पद कंजों को, भावना भव्य स्वीकार रहा ।। विशेष-"अनन्त मनोभिध्येयम्" श्री॰ प्रिया जू के पद कमल प्राणवल्लभ के भी ध्येय हैं तभी तो रसिकाचार्य जन कहते हैं कि-विहरत सदा रसिक रघुनन्दन, लली चरन रज परसे । यही जानि सुखमानि बसी सब, कंचन वन रस अरसे ।। (श्री युगल प्रिया जी) ।।१९।।

चक्राभहारि सुनितम्ब युगं भवत्या, ध्येयं सुधीभिरनिशं रसनाभिषक्तम् ।
ध्यानास्पदं रघुपतेर्मनसोमुनीनां, भावैकगम्यममरेश नताङ्घ्रिपद्मे ।।२०।।

अन्वयः-हे अमरेश नताङ्घ्रिपद्मे ! (अहम) चक्राभहारि, सुधीभिः अनिशं ध्येयम रसनाभिषक्तम रघुपतेः मनसः ध्यानास्पदम् मुनीनां भावैकगम्यम भवत्याः सुनितम्बयुगं भावयामि ।। अनुवाद-हे इन्द्रादिकों से नमस्कृत चरण कमल वाली (अहम्) मैं चक्र

को हरण करने वाले, बुद्धिमानों द्वारा, अहर्निश ध्येयः क्षुद्रघंटिका से युक्त, राघवेन्द्र जू के ध्यान के स्थान, मुनिजनों के केवल भाव करने योग्य, आपके युगल नितम्बों की (विशुद्ध भाव से) भावना करता हूँ ॥ अमरेश नतांघ्रि युगमपद्म ! जो सुधावृन्द के ध्येय रूप । चक्रद्युतिहारि नितम्ब युगल, रसना से मण्डित अति अनूप ॥ ध्यानास्पद राघवेन्द्र मनके, जो श्री मुनीन्द्रजन भाव गम्य । भावना कर रहा मैं उनको, वे वदेही के अंगरम्य ॥ विशेष—"चक्राभहारि" पद की व्याख्या में अनन्त श्री पं० राम वल्लभाशरण जी महाराज चक्र की गोलाई को हरन करने वाले यह अर्थ करते हैं ॥२०॥

कौशेयवस्त्र परिणद्धमलंकृतं ते; कार्तस्वराशनिमणि प्रवरप्रवेकैः ।
रत्नोत्तमै रसनया ग्रहकान्तिमद्भिर्भास्वन्ति निर्मिततया स्वधियन्ति मध्यम् ॥२१॥

अन्वयः-(हे देवि ! भक्ताः) कौशेयबस्त्र परिणद्धम् कार्तस्वराशनिमणि प्रवरप्रवेकै ! अलंकृतम् ग्रहकान्तिमद्भिः रत्नोत्तमैः निर्मिततया रसनया भास्वन्ति. ते मध्यम स्वधियन्ति ॥ अनुवाद—हे देवि ! भक्तजन कौशेय (रेशमी) वस्त्र से सुशोभित स्वर्ण एवं हीरक प्रभृति मणियों से अलंकृत, कान्तिमान ग्रहों के समान श्रेष्ठ रत्नों से विरचित, (वने हुये) रसना (कटि अलंकरण जो क्षुद्र घंटिकाओं से निर्मित होता है) से युक्त, सूर्य की भाँति दीप्तिमान, आपके कटिदेश को ध्यान में भावना करते हैं ॥ कौशेयवसन परिणद्ध अहो, हीरक सुवर्ण मणि की शोभा । अतिकान्तिमन्त नक्षत्रोंवत, रत्नों की रसना मनलोभा ॥ इस भाँति भानु सा दीप्तिमंत, भवदीय सु मंजुल कटिप्रदेश । हे देवि ! रसिक जन के मनका, होता सु ध्यान से ही प्रवेश ॥ विशेष-'ग्रहकान्तिमद्भिः,' कटि प्रदेश की अलंकार-भूता रसना रत्नों से विनिर्मित है । वे रत्न गगन मण्डल के नक्षत्रों की भाँति कान्तिमान हैं, यह भाव है ॥२१॥

अस्वस्थ पत्रनिभमम्ब धियोदरन्ते; भाव्यं भवाब्धितर केवल काल नाशे ।
भूयो न भावि जननी जठरे निवासः स्तेषां मनोधरणि जेऽत्र सुलग्नमासीत् ॥२२॥

अन्वयः—हे भवाब्धितरि ! हे केवल कालनाशे, हे धरणिजे, अम्ब, अस्वत्थ पत्रनिभम धियाभाव्यम ते (तव) उदरं येषां मनः अत्र सुलग्नम् आसीत् तेषां जननी जठरे निबासः भूयः न भावि ॥ अनुवाद—हे संसार सिन्धु की तरणि स्वरूपिणी (नौका रूप) हे एकमात्र काल की बिनासिनी, हे भूमिनन्दिनी ! हे माँ आप का श्री उदर पीपल पत्र की भाँति [सुचिक्कन] एवं सूक्ष्म तथा सद्बुद्धि से ध्यान करने के योग्य हैं । जिनका [भक्तों का] मन यहाँ एकाग्रता पूर्वक लग गया, उनका पुनः माता के गर्भ में निबास नहीं होगा । अर्थात आवागमन छूट जायेगा ॥ हे भवसमुद्र तरणी रूपे, हे काल बिनासिनी भूमिसुते । अस्वत्थपत्र निभ उदरमयी, हे विधि हरिहरादि

शक्ति नुते ॥ सद्बुद्धि भाव्य तव उदर देश, जिनके मनमें निवास पाता। जननी का जठर निवास अहो, उनका सदैव को मिट जाता ॥ विशेष—"जननो जठरे निवास:" भाव यह कि जिनका सूक्ष्म मन श्री जू के चिन्मय वपुष के ध्यान में लग गया, उनकी भौतिक वासनायें नष्ट हो जाने के कारण पुनर्जन्म होना सम्भव नहीं ॥२२॥

नाभीह्रदं हरिमनः करिणः कृशांशो; पुष्टिप्रदं प्रचलितं त्रिवली तरङ्गम् ।
राजीसुशैलनिभं भ्रमिभूतरोम्णां, शान्त्यैतव त्रितपतामतिभावयामः ॥२३॥

अन्वयः—(हे देवि वयम्) त्रितपतां शान्त्यै हरिमनः करिणः कृशांशः पुष्टिप्रदं त्रिवली तरङ्गम् प्रचलितम् भ्रमिभूतरोम्णाम् राजीसुशैलनिभं तव नाभी ह्रदयम् अतिभावयामः ॥ अनुवाद—हे देवि ! हम सब तीनों तापों की शान्ति के लिये, श्री रघुनन्दन के मन: करि की (मन रूपी हाथी की) कृशता को पुष्टि देने वाले, त्रिवली तरंग से युक्त (जिनमें त्रिवली रूपी तरंगे चल रही हैं) तथा सेवार की भाँति रोमावर्ति से सुशोभित (जहाँ आवर्त रूप रोमों की पंक्तियाँ हैं) ऐसे नाभिकुण्ड की अतिशय भावना करते हैं।

आवर्त रोम्ण युत नाभि कुण्ड, शैवल समान शोभा वाली। हरि के कृशकाय मनो करि की, पीनत्व प्रदात्री छविवाली ॥ त्रिवली तरंग से जो चंचल, श्री नाभिकुण्ड को हे माता। त्रैताप बिनासन हेतु आज, संयमित चित्त से मैं ध्याता ॥ विशेष—रसिकाचार्य अनन्त श्री रामचरण दास जी (श्री करुणासिन्धु जी) महाराज नाभि देश-सुषमा का वर्णन कितनी रससिक्त वाणी में कर रहे हैं ॥ "नाभि दिव्य द्विजराज, अमीह्रद अलि जिमि। रबि नन्दिनि छवि भ्रमर, करैं छवि तहँ किमि ॥ त्रिवलि रेख छवि सीवं सूत्र किंकिनि फवि। मनहुँ महा छवि देखि, हँसति त्रिभुन छवि ॥" प्रस्तुत पंक्तियाँ अपने आप में पूर्ण एवं रस की उद्गाता हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि मूल श्लोक का सटीक अनुवाद ही रस सिद्ध सन्त की वाणी में उतर आया है॥२३॥

नीलाभकञ्चुकमणीन्द्र समूह निष्कैः वक्षोजयुग्ममति तुङ्ग मलंकृतन्ते ।
हारैर्मनोहर तरैस्तरुणि ! क्षितीजे; सौन्दर्य वारिनिधि वारितरङ्गसङ्गम् ॥२४॥

अन्वयः—हे क्षितीजे ! हे तरुणि ! (वयम्) नीलाभ कञ्चुक मणीन्द्र समूह निष्कैः मनोहर तरैः हारैः अलंकृतं अति तुंगं सौन्दर्य वारिनिधि वारितरंग संगम् ते वक्षोज युग्मम् (भावयामः) अनुवाद—हे भूमि जे ! हे तरुणि ! हम नीलकान्ति वाली कञ्चुक और श्रेष्ठमणिसमूह से रचित निष्कों (कण्ठाभूषणों) एवं परम मनोहर हारों द्वारा सुशोभित अति ऊँचे सौन्दर्य रूपी समुद्र के तरंग-संगमवत् आपके युगल वक्षोज का हम ध्यान करते हैं ॥ नीलाभकंचुकी से एवं, गुम्फित मणीन्द्र युत कंठमाल

Scanned by CamScanner

अति रम्य महाई सुहारों से, भूषित सुतुंग वक्षोज जाल ॥ सौन्दर्य वारिनिधि लहरों के, संगम समान शोभाशाली। हे तरुणि मणे ! हे भूमि सुते ! करते हम ध्यान प्रेमपाली ॥ विशेषः—"वक्षोज युग्ममति" भावना के जिस स्तर में आरूढ़ हो, रसिक मानस श्री प्रिया प्रीतम के शृंगार महोदधि का अवगाहन करता है। वहाँ दृष्ट एवं श्रुत विषय गंध तो दूर "ताको नीरस ज्ञान योग तप छोई लागे" की स्थिति होती है। रसिकाचार्य श्री हित हरिवंश महाप्रभु की राधा सुधानिधि के इसी सन्दर्भ में ये 'विन्दु' अवगाह्य हैं। महाप्रभु श्री जू के युग्म वक्षोज का कितने श्रद्धा से नमन करते हैं। क्रीड़ासरः कनक पंकज कुड्मलाय, स्वानन्द पूर्ण रस कल्पतरोः फलाय। तस्मै नमो भुवन मोहन मोहनाय, श्री राधिके ! तव नवस्तन मण्डलाय ॥ श्री छन्दसंख्या ३३,३४,३५ एवं ३६ विशेष रूप से अवलोकनीय हैं ॥२४॥

बाहू मृणाल मद खण्डन पण्डितौ ते, भीताभयप्रद वदान्यतमौ जनानाम्।
रुक्माङ्गदाङ्कित बिटङ्कितमुद्रिकौ तौ; हैरण्य कङ्कण धृतावलयौ भजामः ॥२५॥

अन्वयः—(हे देवि वयम्) मृणालमद खण्डन पण्डितौ, जनानाम् भीता भयप्रद-वदान्य तमौ, रुक्माङ्गदाङ्कित बिटङ्कित मुद्रिकौ, हैरण्य कङ्कण धृतौ ते तौ बाहू भजामः॥

अनुवादः—हे देवि ! हम मृणाल दण्ड के मद खण्डन में पण्डित (दक्ष-प्रवीण) भक्तजनों को संसार भय से अभय करने में अत्यन्त उदार स्वर्ण कंकण एवं वलय (चूड़ियाँ) विभूषित आपकी युगल बाहु का भजन करते हैं॥ पंडित खंडन मृणाल मद के, भक्तों के सदा अभयकारी। भव भय प्रभीत जग जीवों के, जो दुखहर्ता मंगल कारी॥ टंकित रुक्मागंद-युक्त स्वर्ण, चूरी सु मुद्रिका मनहारी। हे देवि ध्यान पथमें आवें, वे युगल बाहु सब सुखकारी॥ विशेष—'मृणाल मद खंडन पंडित" शब्द से भुजाओं का परम सौकुमार्य एवं "भीताभयप्रद" पद से उनका सर्व सामर्थ्य व्यक्त हुआ। भगवती श्री सीता जी का सर्व सामर्थ्य गायन करते हुये उपनिषद् कहते हैं कि निमेषोन्मेष सृष्टिस्थिति संहारतिरोधानानुग्रहादि सर्वशक्ति सामर्थ्यात्साक्षाच्छक्तिरितिगीयते। (श्री सीतोपनिषद्) ॥२५॥

कण्ठं कपोततरुणीगलकान्तिमोषं; भूषैर्नैकविध भूषितमम्ब तुभ्यम्।
ध्यायेम मानस विशुद्धिकृते कृपालो; योगीन्द्र भावित पदे शमदेशरण्ये ॥२६॥

अन्वयः—हे कृपालो ! हे योगीन्द्रभावितपदे ! हे शमदे ! हे शरण्ये ! हे अम्ब ! (वयम्) मानस-विशुद्धिकृते, कपोत तरुणीगलकान्ति मोषम् भूषैर्नैकविध भूषितम् तुभ्यं (तव कण्ठं) ध्यायेमः॥ अनुवाद-हे कृपालु ! हे योगीन्द्र जनभावित चरणे ! हे शान्ति प्रदात्री ! हे शरण्ये ! हे माँ ! हम मन की शुद्धि के निमित्त कपोती की कण्ठ

Scanned by CamScanner

कान्ति के अपहारक, विविध विभूषणों से विभूषित, आपके कण्ठ-देश का ध्यान करते हैं ॥ हे योगिवृन्द भावित चरणे, हे परम शरण्ये ! हे माता। तव विविध भूषणों से भूषित, श्री कंठ देश को मैं ध्याता ॥ जो कंठ कपोत तरणि की भी, ग्रीवा की शोभा हरण करे; हे शमदे ! कंठ त्वदीय वही मेरे मानस का वरण करे ॥
विशेष--"मानसविशुद्धिकृते" कहकर स्तवकार ने श्री राजकिशोरी जू के कंठ-देश का ध्यान विशेष रूप से मनः शुद्धि कारक निरूपित किया ॥२६॥

वक्त्रेन्दुमिन्दु चय खण्डित मण्डितांशुं, खण्डांश पण्डित मनः परिदण्डिताशम्।
सन्मानसाब्ज मुदितद्युतिदं वरेण्यं; रामाक्षितारक चकोरमहं भजे ते ॥२७॥

अन्वयः– अहं इन्दुचय खण्डित मण्डितांशुम् खण्डांश पण्डित मनः परिदण्डिताशं सन्मानसाब्ज मुदितद्युतिदं, वरेण्यं, रामाक्षि तारक चकोरम् भजे ॥ अनुवाद--मैं चन्द्रज्योत्सना के मद-विखण्डक, किरण-मण्डित पण्डितों के (न्यायशास्त्र के पण्डितों के) मनको परिदण्डित करने वाले, भक्तजन मानस कमल के आनन्दमय प्रकाशक, वरेण्य (वरण करने योग्य) श्री रघुनन्दन नेत्र चकोरों के चन्द्र रूप आपके श्री मुख का ध्यान करता हूँ ॥

मंजुल सुज्योत्सना से मण्डित परिदण्डित करता पण्डित मन। रामाक्षि सुतारक बनि चकोर, लखते जिनका श्री चन्द्रबदन ॥ चन्द्रद्युति होती म्लीन चूर सज्जन मन कैरव खिल जाते। वक्त्रेन्दु दिव्य वह ध्याता मैं मिथिलेशलली का हर्षाते ॥

विशेष–"पण्डितमनः परिदण्डिताशं," पंडित-मन का तात्पर्य न्यायशास्त्र के पंडितों का मन" यह अर्थ करते हुये अनन्त श्री पं० रामवल्लभाशरण जी महाराज कहते हैं कि न्यायशास्त्र में अनुमान करते करते जब कहीं, श्रीकिशोरीजीके मुखचन्द्रको उन्होंनें देख पाया उस समय वे न्यायशास्त्रज्ञ यही कहते हैं कि हमनें उस न्याय में व्यर्थ ही परिश्रम किया ॥२७॥

ताम्बूलराग परिरञ्जित दन्तपङ्क्तिः; प्रद्योतिताधरमधः कृतबिम्बरागम्।
ईषत्स्मितद्युति कटाक्ष विकाशिताशं; वक्त्रं परेश नयनास्पदमाभजे ते ॥२८॥

अन्वयः—(हे देवि ! अहं) ताम्बूलराग परिरञ्जित दन्त पन्क्ति प्रद्योतिताधरम अधः कृत बिम्बरागम् ईषत्स्मित द्युति कटाक्ष विकाशिताशम् परेशनयना स्पदम् ते वक्त्रम् आभजे ॥

अनुवादः—हे देवि ! मैं ताम्बूलराग से रंजित दन्त पन्क्ति से प्रकाशित, बिम्बाफल की अरुणिमा के अधोकर्ता अधर पल्लवों वाले, मन्दस्मित (मधुर मुसुक्यान) की द्युतियुक्त कटाक्ष से सम्पूर्ण दिशाओं को विकसित करने वाले, श्री राम जी के नेत्रों

Scanned by CamScanner

के विश्राम स्थान, आपके श्री मुख का ध्यान करता हूँ ॥

ताम्बूलराग से परिरंजित, दन्तावलिद्योतित अरुणारे। बिम्बाफल लाल म्लीन होते, लखते अरुणाधर वे प्यारे ॥ मन्दस्मिति-कान्ति कटाक्ष छटा, भर देती प्रभा दिशाओं में। ध्यानास्पद राघव नयनों का, ध्याता मुख कंज प्रभाओं में ॥

विशेष:—"परेशनयनास्पदम्" प्रियतम श्री रघुनन्दन की, प्रियामुखचन्द्रानुरक्ति की ओर संकेत किया। स्वामी श्री हरिदास जी के शब्दों में प्रभु कहते हैं। प्यारी जू जब जब देखौं तेरो मुख, तब तब नयो नयो लागत। ऐसो भ्रम होत मैं कबहूँ देख्यो न री, दुति को दुति लेखनी न कागज तथा-ज्यों ज्यों देखौं त्यों त्यों नयनन को तृष्णा होत, प्यारी जू को रूप मानो प्यास ही को रूप है। इस प्रकार स्पष्ट है कि श्री जू की रूप माधुरी (मुखछबि) परेश की नयनास्पद है ॥

नासाग्रमौक्तिकफलं फलदं परेशे; ध्यायन्तिनिज जाड्यबिनाश हेतो।
त्रैलोक्यनिर्मलपदं सुखदं त्वदीयं; स्वेच्छाभिकांक्षिण इदं बहुशो रसज्ञाः ॥२९॥

अन्वय:—(हे देवि) ये बहुशो रसज्ञाः त्वदीयम् सुखदम् त्रैलोक्य निर्मल-पदम् स्वेच्छाभिकांक्षिणः भवन्ति, ते जाड्य विनाशाय हेतोः परेशे-फलदम् इदम् नासाग्र मौक्तिक-फलम् ध्यायन्ति ॥

अनुवाद:—हे देवि जो विविध रसों के वेत्ता (रसिक जन) भवदीय, परम सुखद एवं त्रैलोक्य-निर्मल (तीनों लोकों में निर्मल अर्थात् परम निर्मल) पदकी स्वेच्छा से अभिलाषा करते हैं। वे अपनी जड़ताके विनाशके निमित्त, परेश (श्रीरामजी) में फल (प्रेमाभक्ति) को देने वाले, आपकी इस नासिकाके अग्रभागके मौक्तिकफलका ध्यान करते हैं॥ बहु भाँति रसों के जो रसज्ञ, तव पावन पद के प्रत्याशी। त्रैलोक्य-अमल निर्मल सुखप्रद, रहते जिस पद के अभिलाषी ॥ वे भी निज जाड्य बिनाश हेतु. श्रीराम प्रेम फल के दाता, तवनासा मौक्तिक को ध्याते, जानता सत्य मैं हूँ माता ॥ विशेष भाव यह कि श्री जू की नाशामणि का ध्यान, जीव की जड़ता का विनाशक है ॥२९॥

ज्ञानं निरंजनमिदं विवदन्ति ये ते; मुह्यन्ति सूरि निवहास्तरुणी कटाक्षैः।
नालोकयन्ति नितरां तवदेवितावद् दीर्घायुषाक्षि युगमंजनरंजितं ते ॥३०॥

अन्वय:—(हे देवि) ये सूरिनिवहाः इदम् निरंजनम् ज्ञानम् विवदन्ति, ते (यावत्) अंजन रंजितम् तव अक्षियुगम् नितरां न आलोकयन्ति, तावद् ते दीर्घायुषा (अपि) तरुणीकटाक्षैः मुह्यन्ति ॥ अनुवाद—हे देवि ! जो पंडित बृन्द, निरंजन ज्ञान ऐसा है, वैसा है इस प्रकार विवाद करते रहते हैं। वे जब तक आपके अंजन रंजित युगल-नयन का पूर्णतया दर्शन नहीं पाते, (अर्थात् आपकी कृपा का आश्रय नहीं लेते)

Scanned by CamScanner

तब तक वे दीर्घायु-पर्यंत अर्थात् कल्पों की आयु तक साधन करते हुये भी, तरुणियों के कटाक्ष से मोहित होते रहते हैं ।। वेदान्त निष्ठ विद्वानवर्य, जो ज्ञान निरंजन के भासी । अद्वैत अलक्ष ब्रह्मवार्ता, करने के सन्तत अभ्यासी ।। अंजन अनुरंजित अक्षि-युगल, जब तक न देवि तव लख पाते । तब तक सुदीर्घ कालावधि तक, तरुणी कटाक्ष में उलझाते ।। विशेष—भाव यह कि आप की कृपा कटाक्ष के आश्रय के बिना उत्तम साधन भी आत्यन्तिक विषय-निवृत्ति कर पाने में समर्थ नहीं हो पाते । बार बार विषयों में फसते रहते हैं ।।३०।।

भ्रूवल्लरी विलसितं जगदाहुरीशे; व्यासादयो मुनिवरास्तुत एव नित्यम् ।
नाशाय तस्य तरुणी तिलके त्वदीया; पाशीकृताहरिमनोमृग बन्धनाय ।।३१।।

अन्वयः—हे तरुणीतिलके, हे ईशे ! व्यासादया मुनिवराः नित्यं स्तुत एव आहुः त्वदीया भ्रूवल्लरी जगत् विलसितम् नाशाय, हरिमृगमनो बन्धनाय पाशीकृता ।। अनुवाद—हे तरुणीशिरोमणे ! हे समर्थे ! श्री व्यासादि मुनिश्रेष्ठ नित्य स्तुति करते हुये कहते हैं कि आपकी भ्रूवल्लरी, जगत् के विलास और नाश की कारण तथा श्री राम जी मनरूपी मृग को बाँधने के लिये पाश की भाँति हैं ।

विशेषः—"भ्रूवल्लरी विलसितं" भाव यह कि श्री जू का भृकुति विलास संसार की उत्पत्ति, रक्षण, और संहार का कारण है । यथा-उत्पत्ति स्थिति संहार कारिणीं क्लेश हारिणीं, सर्व श्रेयस्करीं सीतां, नतोऽहं रामवल्लभाम् ।।"हरिमनोमृग बन्धनाय" 'सिनोत्यर्थविगुणैः कान्त्यैं" इत्यादि से स्पष्ट है ।

हे तरुणि तिलक हे महाईश, स्तुति करते व्यासादि नित्य ।
भ्रू युगल आपके पाश रूप, बन्धन को हरिमृत रूप चित्त ।।
जिनके विलास से सृष्टि सकल उद्भव विनाश की गति पाती ।
वे भृकुटि युगल भवदीय देवि, मेरी मति मोद मगन ध्याती ।।

भालं विशालमति सौभग भाजनं ते, सिन्दूर बिन्दु रुचिर द्युति दीप्ति मन्तम् ।
पिण्डीकृतः किमुत राग इतीव तस्मिन्; प्रद्योतते जननि जागत् जन्म भाजाम् ।।३२।।

अन्वयः—हे जननि ! सिन्दूर-विन्दु रुचिरद्युति दीप्तिमन्तम् अति सौभग भाजनम् ते विशालम् भालम् किमुत, जागत् जन्मभाजाम् रागः तस्मिन पिण्डीकृतः इतीव प्रद्योतिते ।। अनुवाद—हे माँ सिन्दूर विन्दु की सुन्दर कान्ति से प्रकाशमान, अत्यन्त सौन्दर्याधिष्ठान, आपका विशाल भाल है । संसार में जो भाग्यशाली पुरुष हैं, क्या उनका राग (प्रेम) ही स्वरूप धारण करके, स्थिर नहीं होगया है । जो अत्यन्त प्रकाशमान है ।।

Scanned by CamScanner

हे अम्ब विशाल तेरा, सिन्दूर बिन्दु द्युति से द्योतित । अत्यन्त सुखी भगका निवास है परम प्रभा से जो ज्योतित ।। मानों समस्त जग जीवों की, पिण्डीकृत प्रीति निवास थली । ध्याते वह परम प्रकाश उत्स खिल रही मंजु उर कंज कली ।।

विशेष—स्तवकार श्री जू के भाल देश में, प्रतिष्ठित सिन्दूर बिन्दु में भक्तजनों के पिण्डी भूत राग की उत्प्रेक्षा करते हैं ।।

आदर्श वर्तुल कपोल विलोल लोलं, कर्णावतंस युगलं जन जाड्य नाशम् ।

सूर्यादि कान्तिहरमाश्रयमोजसांते; तीव्रंधिया धरणिजे स्वधियन्तिधीराः ।।३३।।

अन्वयः—हे धरणि जे ! धीराः आदर्शं वर्तुल कपोल बिलोललोलं जनजाड्य नाशम् सूर्यादिकान्तिहरम् ओजसाम आश्रयम् ते (तव) कर्णावतंसयुगलं तीव्रं धिया स्वधियन्ति

अनुवाद-हे भूमि नन्दनी श्री जानकी जी ! धीर-पुरुष मुकुर कपोलों में झूलते हुये, भक्तों के अज्ञान विनाशक, सूर्यादिग्रहों की कान्ति के अपहर्ता, तेजों के आश्रयभूत आपके युगल कर्णभूषणों को विशुद्ध भाव पूर्वक सूक्ष्म बुद्धि से ध्यान करते हैं ।।

दर्पण द्युतिमय गोल गोल, सुकपोल युगल में छबि भारी । कर्णावतंस जनजाड्य हरण, सूर्यादिग्रहों के द्युति हारी ।। तेजों के भी जो परमाश्रय, धीरों की धी के ध्येय चरम (हे धरणि सुते ताटंकयुग्म, मेरे वे आश्रयभूत परम ।।

विशेष—"तीव्रं धिया स्वधियन्ति" भाव यह कि प्रज्ञ सन्त हैं । वे भी अत्यन्त सूक्ष्म एवं सत्वस्थिति बुद्धि से जब श्री जू के ताटंक युगल का ध्यान करते हैं, तभी उनके आत्यन्तिक जाड्य का नाश होता है ।।३३।।

कालोविभेति जगतामतिभक्षकस्ते; जैवातृको भवदशीमगुणोयतो सौ ।

सर्वातिवल्लभतया भजनीयरूपे, मन्यामहे हरिरितिश्रुति भूषसारम् ।।३४।।

अन्वयः—हे भजनीय रूपे ! जगताम् अतिभक्षकः कालः ते बिभेत, यतः असौ जैवातृक हरिः सर्वाति वल्लभतया असीम गुणः श्रुतिभूषसारम् अभवत् इति मन्याम् हे ।।

अनुवाद—हे भजन करने योग्य स्वरूप वाली देवि ! जगत् मात्र का अति भक्षक काल भी आप से डरता है । इस लिये जीवन दाता (हरिः) चन्द्रमा सभी को अति प्रिय होने के लिये निःसीम गुणों से युक्त आपके श्रवणो का अति श्रेष्ठभूषण बना हुआ है, ऐसा हम मानते हैं ।।

भजनीय स्वरूपे हे देवी, अति भक्षक जगका महाकाल । भयभीत आप से है रहता, रहता सुन्दर लै पास जाल ।। इसलिये चन्द्र जीवन दाता श्रुति भूषण सार स्वरूप बना । श्री कर्ण देश का आश्रय ले, कर लिया भाग्य वर्द्धन अपना ।। विशेष-"कालो विभेति" भाव यह है कि श्री राज किशोरी जू अत्यन्त कोमल स्वभाव वाली हैं ।

Scanned by CamScanner

काल जगत मात्र का भक्षक होनेके कारण. अपनी कर्म कर्कशता का विचार करके श्री राजकिशोरी जू से डरता रहता है। क्योंकि श्री जू तो अपराधीके प्रति भी सकरुण ही रहती हैं। चन्द्रमा ने अवसर का लाभ उठाया, अपने तापापहारक कर्म को श्री चरणों में सुनाया, फलतः भोरी श्री राजकिशोरी जू ने उसे अपना कर्ण भूषण बना लिया ॥३४॥

सीमन्तम्बतव सुन्दरतातिसीमं, मुक्ताविभूषितमलं समभागभाजाम्।
निःसीमतापदकृते यतयो यतन्तिः जानीमहे महितवन्दितसीममूर्ते ॥३५॥

अन्वयः—हे महितवन्दितसीममूर्ते ! हे अम्ब ! समभागभाजाम् मुक्ताविभूषितम् सुन्दरतातिसीमम् तव'सीमन्तम् यतयः निस्सीमतापदकृते अलम् यतन्ति। (इतिवयम्) जानकीमहे॥ अनुवाद—हे पूजनीय की परमवन्द्यमूर्ते ! हे माँ समभाग में विभक्त मौक्तिक विभूषित, सौन्दर्य की सीमारूप, आप की माँग (केश सीमा) का सनकादि मुनिश्रेष्ठ, अनन्त पद की प्राप्ति के लिये, अत्यन्त प्रयास पूर्वक नित्य ध्यान करते हैं यह हम जानते हैं॥

हे महामहिम्न बृन्द वन्दित, हे वन्द्य पदोंकी सीममूर्ति। सनकादि यतीन्द्रों की होती, निस्सीम परम पद की सुपूर्ति॥ ध्याते जब वे सीमन्त देश, हे अम्ब तुम्हारा छविशाली समभाग विभाजित मौक्तिक से, भूषित सीमन्त प्रभावाली॥

विशेषः—'निःसीमतापदकृते" कह कर अनन्तपद अथवा दिव्य श्री साकेतधाम की ओर संकेत किया गया। यथा—सुनहु वेद निष्खेद धाम गुनतीत परम शुचि। वर्णाश्रम सुख दुःख, तहाँ नहिं पाप पुण्य रुचि॥ अति निर्मल निर्वान, परम पद महाचयनपुर। महादिव्य अति अचल, अगम है ब्रह्मादिक सुर॥ (रसिकाचार्य अनन्त श्रीस्वामी करुणासिन्धु जी महाराज) ॥३५॥

कालाहिभीति भजतामहिभोगभिन्नाः पायात्परेश्वरि सताभवती सदानः।
एणी दृशस्तव विशालतरानु वेणीः दर्भाग्रभाग सदृशी सुदृशां त्रिलोक्याः ॥३६॥

अन्वयः—हे परेश्वरि ! कालाहि भीति भजताम् सताम् अवती अहि भोगभिन्ना दर्भाग्र भाग सदृशी, त्रिलोक्याः सुदृशाम् एणीदृशः तव विशाल लतरानु वेणी नः सदा पायात्॥ अनुवाद—हे परेश्वरी ! काल के भय से भजन करने वाले सज्जनों की रक्षा करने वाली, सर्प के शरीर सदृश (समान) कुशाग्रभाग के समान त्रिलोकी की सुनेत्रा देवियों के मध्य मृगी के समान नेत्र वाली, आपकी विशाल तरावेणी हमारी सर्वदा रक्षा करे॥ जो काल व्याल से भीत जीव, तब भजन निरत साधनशाली। उन सज्जन जन की तव वेणी, वह कठिन क्लेश हरने वाली॥ दर्भाग्र तुल्य

Scanned by CamScanner

नागिन तुल्या, कृष्णा कमनीया वेणी की। करते हम ध्यान मृगाक्षि देवि, त्रैलोक्य सुनेत्रा श्रेणीकी॥ विशेष-स्पष्ट है। भजन निष्ठ साधक काल भय से मुक्त हो जाते हैं॥३६॥

साटीसुसूक्ष्मतराति गतानि नीला; सौवर्णसूत्रकलिता कृपयावृताते।
भर्तुः स्वरूपमनुभावयतां जनानां; प्रीत्यैकरोषि परदेवि यदापिधानम्॥३७॥

अन्वयः—हे परदेवि ! भर्तुः स्वरूप अनुभावयतां जनानां प्रीत्यै यतत्वं अपिधानं करोषि, सा साटी ते कृपयावृता, सौवर्णसूत्र कलिता अति नील सु सूक्ष्म तरातिगता॥
अनुवाद—हे परदेवि ! भर्ता श्री राघवेन्द्र के भजननिष्ठ जनों की प्रीति के हेतु आप जिस साटिका (साड़ी) को धारण करती हैं। वह अत्यन्त कृपा से पूर्ण, स्वर्णसूत्र विरचित अत्यन्त नोल एवं अत्यन्त ही मीनी है।
हे परम देवि! तुम्हरे तनकी; साटिका नील सूक्ष्मा रम्या। सौवर्णसूत्रग्रथिता दिव्या, भावुक मन भव्य भाव गम्या॥ श्री रामस्वरूप ध्यानकर्ता, भक्तों को परम प्रीति दात्री। तव परम कृपा की मूर्ति रूप, हे करुणामयी महद्धात्री॥
विशेष—परदेवि' कहकर स्तवकार ने श्री जू का परदेवित्व गान किया। सभी महान देवियाँ भी श्री जू की सेवा में निरत रहती हैं। यथा—यस्मिनशैलसुवालिकेन्दु-कलिका कल्याण माल्यायते। वाग्देवी कवरी विभूषणमणिग्रामः धलस्तोमिति॥ नासामौक्तिक रश्मयस्मर सरोजाक्ष्यास्तुषारन्त्य हो। मैथिल्या चरणं शुपल्लव चयः शय्यास्तु मच्चेतशः॥ श्री जानकी चरण चामरे॥ तथा सिया जू रानिन में महरानी गौरा पान लगावति हँसि हँसि, रमा खवावति ब्रानी॥ इत्यादि आचार्य वाणियों से स्पष्ट है॥

पारेगिरां गुणनिधेश्रुतियो वदन्ति, रूपं त्वदीयमपरं मनसोप्यगम्यम्।
साक्षात् कथं सरसिजाक्षि भवेद्दते ते, बुद्धौ कृपामनु कृशोदरि मा दृशांतत्॥३८॥

अन्वयः—हे गुणनिधे ! हे सरसिजाक्षि ! हे कृशोदरि ! श्रुतयः त्वदीयम् अपरं रूपं गिरां पारे मनसा अपि अगम्यम् वदन्ति। तत् ते कृपाम् ऋते मादृशाम् बुद्धौ कथम् साक्षात् अनुभवेत॥ अनुवाद-हे गुणनिधे ! हे सरसिज (कमल) नयने ! हे कृशोदरि ! वेद आपके अपार रूप को वाणी से परे, और मन से भी अगम्य कहते हैं। वह रूप आप की कृपा के बिना हम जैसों की बुद्धि में कैसे अनुभूत हो सकता है॥ हे सरसिजाक्षि सद्गुणनिलये, हे देवि कृशोदरि कल्याणी। श्रुतिगीत आप का रूप परम, वर्णन कर सकती कब वाणी॥ जो मनसे सदा अगम्य रम्य, वह रूप महाँ मंगलकारी। अनुभूत बुद्धि से हो सकता, हम जैसों के मंगलकारी॥ विशेष-भाव यह है कि श्री राजकिशोरी जू के काम वैभव का वेदों में गायन है। उनका वह रूप उनकी कृपा

Scanned by CamScanner

के बिना मन से भी परे हैं ॥३८॥

किं चित्रमत्र जननि ! प्रभया प्रकाश्यं; विश्वं वदन्ति मुनियस्तव देवि ! देवाः।
जाताश्रयस्त्रिभुवनैर्गुणतोभिवन्द्य; स्त्राणादि कर्म विभवं परमस्य यस्याः ।

अन्वयः—हे देवि ! हे जननि ! मुनयः देवाः विश्वम् तव प्रभया प्रकाश्यम् वदन्ति। अस्य त्राणादि कर्मस्याः परम विभव (तदा) ॥ अनुवाद-हे देवि ! हे माता ! मुनि गण एवं देववृन्द, विश्व को आपकी कान्ति से प्रकाशित कहते हैं। इस विश्व के रक्षणादि कर्म को जिनका सर्वोत्कृष्ट वैभव बतलाते हैं, तब आपका आश्रय लेने वाला जन, उत्तमोत्तम गुणों से त्रैलोक्य में वन्दनीय हो इसमें क्या आश्चर्य है ॥ हे अम्ब देवि मुनिगण कहते, है विश्व प्रकाश प्रभा तेरी। त्राणादि कर्म वैभव विशिष्टः उत्कृष्ट देवि ! तेरे हैं री ॥ जो चरणों का आश्रय ले ले, बन जाय त्रिलोकी बन्दनीय आश्चर्य नहीं कुछ भी इसमें, हे मान्यों की भी माननीय ॥ विशेष-"त्राणादिकर्मः परम विभवम्" त्राणादि कर्म से तात्पर्य, उद्भव, स्थिति, संहारादि" कर्म जिनके सर्वोत्कृष्ट वैभव हैं यथा- उद्भव स्थिति संहार कारिणीं क्लेश हारिणीम्। सर्वश्रेयस्करीं सीतां, नतोऽहंरामवल्लभाम् ॥कहकर मानसकार ने गायन किया है ॥३६॥

वेदास्तवाम्ब ! विवदन्ति निज स्वरूपं; नित्यानुभूति भवभाव पराः परेशैः।
निर्णेतुमद्य यतयस्तपसा यतन्ते; बोधाय पाद सरसीरुह युग्म भृङ्गाः ॥४०॥

अन्वयः—हे अम्ब ! वेदा परेशैः नित्यानुभूति भवभाव परा, तव निज स्वरूपम् विवदन्ति, तत् बोधाय निर्णेतुम् यतयः पादसरसीरुह युग्म भृङ्गाः अद्य तपसा यतन्ते ॥ अनुवाद—हे माँ वेद ईश्वरों के सहित आपकी नित्यानुभूति के भाव में परायण हो, आपके निज स्वरूप का वर्णन करते हैं। (वर्णन के उस बिवाद के) निर्णयार्थ एवं ज्ञानार्थ मुनिगण युगल चरणपंकजों के भ्रमर रूप हो आज (भी) तपस्या के द्वारा यत्न में लगे हैं ॥ हे अम्ब ईश्वरों सहित वेद नित्यानुभूति के भाव भरे। भवदीय स्वरूप सुनिगदन में, रहते निमग्न रस के अगरे ॥ उस रूप विमल के बोध हेतु निर्णय पा लेने को बिचार। सनकादि मुनीन्द्र आज भी हैं, तप निरत त्वरा में भर उदार ॥ विशेष—"परेशैः" भाव यह है कि-ब्रह्मादि त्रिदेव ये ईश कहे जाते हैं। श्री राजकिशोरी जू अन्य देवी देवताओं से तो वन्दित हैं ही, इन त्रिदेवों से भी जो ईश्वर कोटि के हैं, इनसे भी परम वन्द्य हैं ॥४०॥

जातं त्वदेव नितरां जगतां निदानं; मन्यामहे तदिदमम्ब कृतं श्रुतीनाम्।
सर्वं यतः खलु विचेष्टितमाशुशक्तेः; कार्यं हि कारण गुणानवलम्ब विद्यात् ॥४१॥

Scanned by CamScanner

अन्वयः—हे अम्ब ! नितरां निदानं, त्वत् एव जातम् तदिदम् श्रुतीनां कृतम् मन्याम् हे, सर्वं खलु शक्तेः आशु विचेष्टितम्, यतः हि कार्यंहि कारण गुणान् अवलम्ब्य विधात ॥ अनुवाद-हे माता ! संसार का परम आदि कारण (महत्तत्व) आप से ही उद्भूत है। हम इसे श्रुतियों का अभिप्राय मानते हैं। यह समस्त दृश्य शक्ति की ही त्वरित चेष्टा का ही स्वरूप है। क्यों कि निश्चय ही कार्य कारण गुणों के अवलम्ब से स्थित होता है ॥

अम्बे ! जगकारण महत्तत्व, उद्भूत आप से श्रुति गाते। सम्पूर्ण दृश्य संसार आप की, त्वरित चेष्टा बतलाते ॥ सच भी है प्रत्येक कार्यकारण के गुण अपनाता है। इस लिये चराचर जड़ चेतन, सीतामय ही दिखलाता है ॥ बिशेष—सांख्य शास्त्र के अनुसार, मूल प्रकृति ही महत्तत्व की आदि कारण है पुनः महत्तत्व से ही पंच ज्ञानेन्द्रिय पंच तन्मात्राओं का विस्तार हुआ है। इस प्रकार संसार कार्य और श्री तत्त्व कारण हुआ, अस्तु सम्पूर्ण विश्व ही श्री सीतामय हुआ ॥ ४१॥

जानीमहे जननि! तेनयनारविन्दस्योन्मीलिनेऽजनि जगत् क्षयस्तन्निमीलात्।
वैषम्यशून्य समतां समुपागते यत्स्यादस्य पालनमसंशयमस्य नूनम् ॥४१॥

अन्वयः—हे जननि ! ते नयनारविन्दस्य उन्मीलने जगत् अजनि, तत् निमीलात् अस्यक्षयम् स्यात् यत् वैषम्यशून्य समताम् समुपागते सति, अस्य असंशयम् पालनम् इति नूनम् जानीमहे ॥ अनुवाद—हे जननी ! आपके नयनारविन्द के उन्मीलन (खोलने) से संसार का उद्भव और उसके निमीलन (बन्दकरने) से इसका (संसार का) नाश होता है, और उनकी वैषम्यशून्य समता (अर्थात उन्मीलन निमीलन क्रिया से शून्य एक रस अवलोकन) से इस संसार का पालन होता है, ऐसा हम निश्चय ही जानते हैं ॥ माता ! दृग के उन्मीलन से, संसार प्रभव हो जाता है। करते ही नेत्र निमीलन के, उसका विनाश दिखलाता है ॥ वैषम्यशून्य समता से ही, पालन सदैव होता रहता। निश्चयही यही परमसत है' अन्तरतम अपना बतलाता ॥ विशेष-'वैषम्शून्य समता" अर्थात दृष्टि साम्यावस्था। भाव यह है कि जब दृष्टि का न उन्मीलन होता और न निर्मीलन केवल एक रस अवलोकन होता है, तब विश्व का भरण पोषण होता है ॥४२॥

ज्ञातं त्वदीयमपरं चरितं विशालं; भावंभवे ननुनिजे प्रकटी करोषि।
प्रेम्णैवतैः प्रथमतः परमानुभावं भाव्यं पदाब्जमनिशं स्वजनैरतस्ते ॥४३॥

अन्वयः—(हे देवि !) त्वदीयं अपरं चरितं (अस्माभिः) ज्ञातम्, ननुनिजे भवे विशालं

भावं प्रकटी करोषि । अतः तैः स्वजनैः प्रथमतः परमानुभावम् ते पदाब्ज अनिशं प्रेम्णैव भाव्यम् ॥ अनुवाद—हे देवि ! आपका एक और चरित्र भी हम जानते हैं (वह यह) कि आप अपने चिन्मय स्वरूप में भक्तों के हृदय में महाभाव का प्राकट्य करती हैं। इसी लिये वे प्रथम से ही परम प्रकाश वाले आपके श्री चरणों की प्रीति पूर्वक निरन्तर भावना (ध्यान) करते हैं ॥ इस से भी भिन्न चरित्र एक जानते आपका हे देवी ! पाजाते महाभाव चिन्मय, वपु में तेरे जो पद सेवी ॥ अतएव भक्तजन प्रागेव, पदपंकज पूर्ण प्रकाश भरे । अत्यन्त प्रीति से अहर्निशा, ध्याते अपने उरबीच धरे ॥ विशेष–"विशालं भावं प्रकटी करोषि" भाव यह है कि महाँभाव का उदय, महाँभाव की घनीभूत प्रतिमा श्री विदेहराज नन्दिनी जू की कृपा से ही सम्भव है। आह्लादिनीं शक्ति के घनीभूत विलाशका नाम ही प्रेम है। प्रेम की प्रगाढ़तम अवस्था का नाम ही महाभाव है। वह महाँभाव ही श्री राजराजेश्वरीं श्री जू का अपना स्वरूप है।

येषामदः परमवस्तु च तज्जनानां, प्रद्योतते जनकजा चरणारविन्दम् ।

सर्वं समीक्ष्य इह कर्ममनोवचोभिः ब्रह्म स्वरूपमति दुर्लभतानु सेव्यम् ॥४४॥

अन्वयः—(हे देवि !) येषां अदः जनकजा चरणारविन्दम् परम वस्तु प्रद्योतते, तज्जनानां, इह कर्म मनो वचोभिः सर्वं समीक्ष्य अति दुर्लभताम् सेव्यम् ब्रह्म स्वरूपम् भाति ॥ अनुवाद—(हे देवि ! आपके कृपापात्र) जिन भक्तों को श्री चरणारविन्द ही परम वस्तु (परम पुरुषार्थ स्वरूप) प्रकाशित हो गये, उन्हें इस संसार में, कर्म वचन और मन से ब्रह्म स्वरूप (निर्गुण निराकार कूटस्थ रूपों वाला) सब देखते हुये अत्यन्त दुर्लभता से सेव्य प्रतीत होता है ॥ जिन रसिक जनों के अन्तर में, (श्री) चरणों का परम प्रकाश हुआ । परम चरम पुरुषार्थ रूप, यह प्रसरित भाव विकाश हुआ उनको मन बचन कर्म से भी, दुसेव्य ब्रह्म भी हो जाता । उनका मन भृंग विश्वभर में, रस की न गन्ध किंचित पाता ॥४४॥

किं दुर्लभं चरण पङ्कज सेवयाते, पूर्णा रमन्ति रमणीय तया त्रिलोक्याम् ।

वस्तु प्रकाशविशदं हृदये त्वदीयं; तेषामहो किमुत साधन कोटि यत्नैः ॥४५॥

अन्वयः—हे देवि ! ते (तव) चरणपङ्कज सेवया किं दुर्लभं (तव भक्तः) रमणीयतया पूर्णा रमन्ति (येषाम) हृदये प्रकाश विशदं वस्तु (त्वदीयं चरणारविन्दं विद्योतते) तेषां अहो साधन कोटि यत्नैः किमुत ॥ अनुवाद—हे देवि ! आपके श्री चरण कमलों की सेवा से क्या दुर्लभ है ? आपके भक्त जन रमणीयता से परिपूर्ण होकर त्रैलोक्य में रमण करते हैं । जिनके हृदय में स्वच्छ एवं प्रकाशमय वस्तु (आपके श्रीचरणारविन्द)

प्रतिष्ठित हैं । अहः उन्हें करोड़ों (अनेक प्रकार के) साधनों से क्या प्रयोजन ॥ हे देवि श्री चरण सेवा से दुर्लभ दुष्प्राप्य भला क्या है । यह सोच आपके भक्तों को, मिल जाता भला नहीं क्या है ॥ हो गये प्रतिष्ठित हृदयों में, जिनके श्री चरण प्रकाश धाम । उनको साधन के कोटि कोटि, यत्नों से फिर क्या रहा काम ॥ विशेष— "रमणीय तया पूर्णा रमन्ति" रमणीय तया से परिपूर्ण होकर त्रैलोक्य में रमण करते हैं भाव यह है कि उन्हें श्री चरणों की सेवा की रमणीयता के रस में निरन्तर निमग्न हो त्रैलोक्य में रमते रहते हैं ॥४५॥

धन्यास्त एव तवदेवि ! पदारविन्दं; स्यन्दाय मान मकरन्द महर्निशं ये ।
भृङ्गायमानमनसो नितरां भजन्ते, भावाव बोध निपुणाः परदेवतायाः ॥४६॥

अन्वयः—हे देवि ! भावाववोधनिपुणाः ये परदेवतायाः तव स्यन्दायमान मकरन्दम् पादारविन्दम् अहर्निशं भृङ्गायमान मनसा नितराम् भजन्ते ते एव धन्याः ॥ अनुवाद- हे देवि भाव सम्बन्धी ज्ञान में निपुण (दक्ष) जो भक्त परदेवता स्वरूप आपके मकरन्द स्यन्दित श्री चरणारविन्दों में अपने मनको भ्रमर बनाये हुये, रातदिन सर्वदा पूर्णतया भजन परायण रहते हैं वे ही धन्य हैं ॥ भावाववोध में निपुण सन्त, स्यन्दाय मान मकरन्द चरण । अरविन्द अनूपम का अनुदिन, मनसे करते बनि भृङ्ग वरण ॥ निर्भर नितान्त होकर रहते, अनुरक्त भजन में निरत महाँ । हैं धन्य वही जगतीतल में, होगी तुलना कब भला कहाँ ॥ विशेष—"भावाववोधनिपुणाः" कहकर रागानुगाभक्ति के मर्मज्ञ सन्तों की ओर संकेत किया गया है । नवधा एवं गौणी भक्ति के द्वारा जिस रूप की झलक प्राप्त होती है; रसिक जन उससे सन्तुष्ट नहीं होते । वे तो रसात्मक सम्बन्ध की ही कामना करते हैं ॥४६॥

पादाब्जराग परिरञ्जित चित्तभृङ्गाः; येषां समीक्ष्य इह जातमिदं स्वरूपम् ।
तेषां न किं प्रवदते परितो वरिष्ठं, साध्यं भवेदिह परत्र न किञ्चिदन्यत् ॥४७॥

अन्वयः—हे देवि ! इदं स्वरूप समीक्ष्य इह येषाम् पादाब्जराग परिरञ्जित चित्त भृङ्गः जातम्, तेषां परितो वरिष्ठम् किं न प्रवदते । (पुनः तेषां) इह परत्र अन्यत् किञ्चित न अनुवाद-हे देवि इस स्वरूप को देखकर आपके चरणारविन्दों के अनुराग से इस संसार में, जिन भक्तों का चित्त अनुरक्त भृङ्गवत् हो गया, उनके लिये इस से अधिक कोई श्रेष्ठ वस्तु कौन बता सकता है । (वस्तुतः) उनके लिये इस लोक और परलोक में अन्य कुछ भी साध्य वस्तु नहीं है ॥ अवलोक आपका यह स्वरूप, जो चरण कमल अनुरक्त हुये । जिनके मंगलमय चित्त भृंग पी पद पराग उन्मत्त हुये ॥ इससे फिर

Scanned by CamScanner

श्रेष्ठ त्रिलोकी में. क्या और कोई बतलावेगा। प्राप्तव्य पदार्थ और कोई, कैसे तुलना में आवेगा। विशेष--'परितो वरिष्ठम् किम्" भाव यह है कि सम्पूर्ण साधनों के द्वारा परम साधन कैवल्यपद और कैवल की भी निस्सारता प्रेमाभक्ति की उपलब्धि में प्रतीत होती है। उस प्रेमाभक्ति के परम आश्रय अधिष्ठान श्री प्रिया जू के पद कमल हैं। अस्तु इससे श्रेष्ठ वस्तु कोई भी क्या बतलावेगा। सम्भवतः इसी भाव भूमि में प्रतिष्ठित गो० श्री हित हरिवंश जी महाराज कहते हैं। कि—अलं विषय वार्त्तया नरक कोटि वीभत्सया, वृथा श्रुति कथादयो वत् बिभेमि कैवल्यतः। परेश भजनोन्मदा यदि शुकादयः किं ततः, परं तु मम राधिका पदरसे मनो मज्जतु ॥४८॥

चुम्बन्ति चिद्घन महोमकरन्दमस्या, देवैर्मुनीन्द्रनिचयैरति दुर्लभं ते ।
पादाब्जयोरति विकाश विलास बोधः; स्यादेव देवि तव कान्तनिजस्वरूपे ॥४८॥

अन्वयः—हे देवि ! (ये रसिकाः) देवैः मुनीन्द्र निचयैः अति दुर्लभं अस्यास्ते पादाब्जयोः चिद्घनम् मकरन्दम् चुम्बन्ति (तेषाम्) तव कान्त निजस्वरूपे अतिविकास विलास बोधः स्यादेव। अनुवाद—हे देवि ! जो रसिकजन. देवता और मुनीन्द्रवृन्द को भी दुर्लभ आपके श्री चरणकमलों के चिद्घन मकरन्द को पान करते हैं। उन्हें आपके कान्त श्री रघुनन्दन के स्वरूप में अत्यन्त प्रकाश युक्त विलास का वाध होता ही है। देवेन्द्र मुनीन्द्रों को दुर्लभ; चरणों का चिद्घन कमलराग। जो रसिक शिरोमणि पीते हैं, पावन पदाब्ज का मधुपराग। श्री राघवेन्द्र के निज वपु का, मिलता है उन्हें विलास बोध। एकान्तिक चारुचरित्रों का, हो जाता स्वयं प्रकाश शोध। विशेष—"अति विलास वोधः स्यादेव" भाव यह है कि श्री राज राजेश्वरीजू के श्री चरणानुरागी रसिकों को श्री राम जी की दिव्यातिदिव्य एकान्तिक बिमल लीलाओं की अनुभूति स्वयं ही हो जाती है। उन्हें अलग से किसी साधना की आवश्यकता नहीं है ॥४८॥

यावन्न ते सरसिजद्युतिहारिपादे; नस्याद्रतिस्तरुनवाङ्कुर खण्डताशे ।
तावत् कथं तरुणिमौलिमणे जनानां; ज्ञानं दृढं भवति भामिनि रामरूपे ॥४६॥

अन्वयः—हे तरुणिमौलिमणे ! हे भामिनि ! यावत् ते तरुनवांकुर खण्डिताशे सरसिजद्युतिहारिपादे रतिः न स्यात् तावत् जनानां रामरूपे दृढं ज्ञानम् कथं भवति। अनुवाद—हे नागरिशिरोमणि ! जब तक आपके किसलय कान्ति विमोचक, पद्मप्रभापहारक श्री चरणकमलों में रति का उदय नहीं होता, तब तक भक्तों को श्री राम स्वरूप का दृढ ज्ञान कैसे सम्भव है। हे तरुणिमणे ! जबतक जनकी, रति श्रीचरणों

में हुई नहीं। किसलय कमनीय कमल द्युति के, हारक में मति गति छुई नहीं। तब तक श्री रघुवर रूप ज्ञान, दृढ़वर कैसे हो पायेगा। श्री चरण शरण के विना भला, कोई उनको पाजायेगा। विशेष—भाव यह है कि श्री राघव के रसात्मक वपु का पाना श्री मिथिलेश किशोरी जू की कृपा के विना सर्वथा असम्भव है ॥४६॥

साक्षात्तपोव्रत यमैर्नियमैः समीहे, त्कर्तुं कृपामृतमिह प्रसभंस्वरूपम्।
नाथस्यते श्रुतिवचोविषयं कथं स्यान्मूढ़ो वृथोत्सृजतिदेवि सुखान्यमूनि ॥५०॥

अन्वयः—हे देवि ! श्रुतिवचोविषयम् कृपामृत ते नाथस्य स्वरूपम् इह तपोव्रतयमैः नियमैः प्रसभम् साक्षात्कर्तुम् समीहेत् मूढः अमूनि सुखानि वृथा उत्सृजति कथम् स्यात्। अनुवाद—वेदवाणी के भविष्य, कृपामृत पूर्ण आपके स्वामी (श्री राम जी) के स्वरूप का, यहाँ तपोंव्रतों, यम नियमों द्वारा जो हठ पूर्वक प्रत्यक्षीकरण की चेष्टा करता है, वह मूर्ख यहाँ के (भी) सुखों को व्यर्थ ही छोड़ता है। (उस स्वरूप का साक्षात्कार आपकी कृपा के विना कैसे हो सकता है)। जो अविषय बेदवचन के भी वे कृपासिन्धु हैं तब स्वामी। तप और व्रतों यम नियमों से, हो सकते कब दृगपथ-गामी। जो साक्षात्प्रभु दर्शन हित, हठकरि लौकिक सुख त्याग रहा। वह मूर्ख दुराशा में मरता, हे देवि ! व्यर्थ हो भाग रहा। विशेष—भाव यह है कि भगवत्साक्षात्कार करने में जीव का किया हुआ अपना कोई भी प्रयास सक्षम नहीं है। श्री जू की कृपा ही उस तत्त्व के साक्षात्कार का एकमात्र परम साधन है ॥५०॥

योगाधिरूढ़ मुनियो हरि पादपद्मे; ध्यायन्ति ये चरणपङ्कज युग्ममन्तः।
वाञ्छन्ति विघ्न शतसोप्य निवार्य्यमाणां; भक्ति भवाब्धितरणायकृपा पयोधे ॥५१॥

अन्वयः—वे कृपापयोधे ! यो योगाधिरूढ मुनयः भवाब्धितरणाय हरिपाद् द्म विघ्नशतसोपि अनिवार्यमाणाम् भक्ति वाञ्छन्ति (ते) तव चरणपङ्कज युग्मम् अन्तः ध्यायन्ति। अनुवाद--हे कृपानिधे ! जो योग में तत्पर मुनिजन भव समुद्र संतरण के निमित्त, सैकड़ों विघ्नों से भी निवारित न हो सकने योग्य भक्ति को चाहते है। वे आपके युगल श्री पादपंकजो का अन्तःकरण में ध्यान करते है। योगाधिरूढ मुनि-वृन्दवर्य, जो कांक्षी भवनिधि तरने के। अनिवार्य्य मारणशत विघ्नों से रसमयी भक्तिउर भरने के। उस भक्ति विमल निधि प्राप्ति हेतु, श्री चरणों को वे ध्याते हैं। दुर्लभ तम भी जगतीतल का, वे यहीं सभी कुछ पाते हैं। विशेष-- विघ्नशतसोप्यनिवार्य्य माणाम्" भाव यह कि श्रीराम भक्ति जिस हृदय का वरन करना चाहती हैं, उसका वरण सैकड़ों विघ्नों के उपस्थित करने पर भी कर ही लेती हैं। ऐसी सर्वसमर्थ

Scanned by CamScanner

भक्ति के उपलब्धि के परम उत्स, भगवती श्री जानकी जी के युगल श्री चरण ही हैं। यह सोचकर मुनिजन उन्हीं का ध्यान करते हैं ॥५१॥

चार्वङ्गि ते चरण चारण वन्दि सङ्गं, मह्यं विदेहतनये परिदेहि नान्यम्।
याचे वरं वर विदां वरदेभवत्या; येनामुना तवधवे मम रञ्जनास्यात् ॥५२॥

अन्वय:--हे वरविदां वरदे ! हे चार्वङ्गि ! हे श्री विदेह तनये ! ते चरण चारण वन्दि सङ्गं मह्यं परिदेहि, येन अमुना तव धवे मम रञ्जनास्यात् । भवत्या अन्यं वरं न याचे। अनुवाद--हे श्रेष्ठ ज्ञानियों को वरदान देनेवाली ! हे सुन्दरांगी ! हे श्रीविदेह राजनन्दिनी जू ! अपने श्री चरणों के परिचारकों के चरणों की वन्दना करनेवालों का संग हमको दीजिये । जिस संग से आपके स्वामी श्री राम जी में मेरी स्वाभाविक अनुरक्ति हो। आपसे और कोई अन्य वर मैं नहीं माँगता। हे वर विद्वानों को वरदे ! चार्वङ्गि प्रार्थना सुन लीजै। श्रीचरण चारणों के चारण, जनका सत्संग मुझे दीजै। होजाये जिससे दृढाशक्ति, स्वामी श्रीअवधबिहारी में। बर इससे भिन्न न मांग रहा, बैठा हूँ इसी तयारी में। विशेष--"वर विदां" पराविद्या के ज्ञानी ही श्रेष्ठ ज्ञानी हैं। उन विद्याओं को भी आप श्री विदेहनन्दिनी जू वरदान देनेवाली हैं ॥५२॥

याचेऽहमम्ब रघुनन्दन मूर्ति भावं; सार्द्धं त्वयातिदृढमञ्जलिना विशेषम्।
त्वं देहि वेत्तृवरदे मुनि सङ्घ मुख्या; मन्यन्ति वल्लभतरां स्वपतेर्भवन्तीम् ॥५३॥

अन्वय:--हे अम्ब ! मुनिसङ्घ मुख्याः भवन्तीं स्वपतेः वल्लभतरां मन्यन्ति । हे वेत्तृवरदे ! अहं त्वयासार्द्धं अविशेषं अतिदृढं रघुनन्दमूर्ति भावं अञ्जलिनायाचे त्वं देहि अनुवाद--हे माँ ! मुनिसमूहों के अधिपतिगण आपको अपने पति (श्री राम जी) की अतिवल्लभा मानते हैं। अतः हे सर्वज्ञों को वरदात्री ! मैं आपके सहित न्युनाधिक भाव रहित अति दृढ श्री रघुनन्दन जी की मूर्ति का भाव (अत्यन्त प्रेमाशक्ति) अंजलिबद्ध होकर माँगता हूँ। आप यह दीजिये। मुनि संघ मुख्यगण हे माता ! वल्लभा परम पति की गाते। हैं आप परमवेत्ताओं की, वरदायिनि ऐसा बतलाते। अतएव आपके संग सदा, रघुनन्दन की रति माँग रहा। करबद्ध द्वार में खड़ा हुआ, इस मति गति से अनुराग रहा। विशेष--"रघुनन्दन मूर्तिभावं" से तात्पर्य श्रीराघवेन्द्र की अष्टयाम सेवा को भावना से प्रतीत होता है। रसिक सन्त भावना करते हैं कि- सोदिन आइहैं कब फेरि। नित विलास विलोकिहौं, पिय संग प्रकृति निवेरि ॥ आरती करि भोगवल्लभ, देखिहौं दृग देरि। विविधविधि नहवाय, साज सिंगारि आरति फेरि ॥ पितहिं पिय सिय मातु मिलि, सँग छवि कलेऊ हेरि। लखन चौपड़ खेल दम्पति, छवि सुभोजन केरि। उठि जगाय सुकुंज केलि, अनेक हिये चितेरि ॥

(श्री मंजुल पदावली) इस प्रकार आठों याम श्री प्रिया प्रीतम की सेवामय ध्यान भावना में निमग्न रहने की कांक्षा है ॥५३॥

एवं स्तुत्वा परं रूपं जानक्या जाड्यनाशनम् ।
उपरराम शान्तात्मा योगेश्वरः सदा शिवः ॥५४॥
निरीक्ष्य तन्मुखाम्भोजं भावयन्रूप मद्भुतम् ।
कांक्षं स्तस्याः परां भक्ति पादपंकज योर्दृढाम् ॥५५॥

अन्वयः--योगेश्वरः शान्तात्मा सदाशिवः जाड्यनाशनं श्री जानक्याः परं रूपं एवं स्तुत्वा तं मुखाम्भोजं निरीक्ष्य अद्भुतं रूपं भावयन् । तस्याः पादपंकजयोर्दृढां परां भक्ति कांक्ष्यं उपरराम । अनुवाद--जाड्य विनाशक श्री जानकी जी के पर रूप की इस प्रकार स्तुति करके शान्तात्मा, योगेश्वर भगवान शिव ने, उनके मुखकमल का दर्शन करके, अद्भुत रूप की भावना तथा उनके श्री चरणकमलों में; पराभक्ति की काँक्षा करते हुये, उपरामता प्राप्त की । स्तुति करके इस भांति परम, उन जाड्य विनाशनकारी का । मुख पंकज का दर्शन पाया, श्री पराशक्ति सुकुमारी का । ध्याते अद्भुत स्वरूप उनका मांगते हुये पदकंज भक्ति । योगेश्वर शंकर शान्त हृदय, होगये मौन पा कृपा शक्ति । विशेष--"जाड्य नाशनम्" श्री जू 'सम्वित' शक्ति की अधिष्ठातृ देवता हैं । जीव की जड़ता का नाश उन्हीं श्री जू की कृपा से सम्भव है । अनादि अविद्या ही जीव को जड़ बना रही है । साक्षात्पराविद्या श्री जू के प्राकट्य से अविद्या के विनाश के साथ ही जड़ता का विनाश होना स्वाभाविक है ॥५४-५५॥

उवाच तं वरारोहा जानकी भक्तवत्सला ।
एवमस्तु महादेव यत्त्वयोक्तं च नान्यथा ॥५६॥

अन्वयः--भक्तवत्सला वरारोहा जानकी तं शिवं उवाच हे महादेव ! यत्त्वयोक्तं एवमस्तु अन्यथा न । अनुवाद--भक्तवत्सला, परमसुन्दरी श्री जानकी जी ने उन श्री शिव जी से कहा कि--हे महादेव जी ! आपने जैसा कहा वैसा ही होगा अन्यथा नहीं । सुनकर ऐसा स्तवन दिव्य, वे भक्तवत्सला वैदेही । होगईं प्रसन्न वरारोहा, सर्वज्ञा भावुकजन नेही । बोलीं गद्गद हो एवमस्तु, हे महादेव ! अन्यथा नहीं । होगी मन कांक्षा पूर्ण सभी, वाणी हो सकती वृथा नहीं ॥ विशेष--"एवमस्तु च नान्यथा" स्तवन के अन्त में भगवती श्री मिथिलेश नन्दिनी जू का यह वरदान, भगवान शंकर के माध्यम से फल श्रुति के रूप में दिया गया है । तथा नान्यथा शब्द के द्वारा उसको

Scanned by CamScanner

अवश्य फलरूपता व्यक्त की गई है। "भक्तवत्सला" विशेषण के द्वारा श्री किशोरी जू के भाव विगलित अन्तःकरण की ओर संकेत किया। यथा--हिमहुलगे जो सी सी सिसकत, आपन नाम विचारी। देत परम रस रूप धाम निज, अचल अमल अविकारी॥ हे कारुण्यपूर्ण मृदु लोचनि, मोचनि दोष दवारी। क्षमामयी मंजुल मृदु मूरति, श्री मिथिलेश दुलारी ॥५६॥

अन्यं ते कांक्षितं ब्रूहि दास्यामिदेव दुर्लभम्।
सत्यान्मयि कृपोन्मुख्यां न किंचितस्य दुर्लभम् ॥५७॥

अन्वयः--ते अन्य यत् कांक्षितं तद्ब्रूहि देवदुर्लभम अपिदास्यामिमयि कृपोन्मुख्यां सत्यां तस्य किंचित दुर्लभम् न। अनुवाद--(श्री जू ने आगे कहा है कि हे महादेव जी!) और भी जो आपका अभीष्ट हो, भले ही वह देवदुर्लभ भी क्यों न हो, आप कहिये मैं वह भी प्रदान करूँगी। मेरी प्रसन्नता के पश्चात् "दुर्लभ" नाम की कोई भी वस्तु नहीं होती। बोलीं श्री रामवल्लभा हे, शिवशंकर! हो निर्भीक मना। लें माँग और भी निज अभीष्ट, वरदान भले हो परमघना॥ देवों को भी दुर्लभ है पर, कर सकती आज प्रदान सभी, मेरी प्रसन्नता शब्दकोष, रखता क्या दुर्लभ शब्द कभी ॥५७॥

प्रसन्नवदनां दृष्ट्वा सोऽपि देवशिरोमणिः। ययाचे वरमात्मीयं रहस्यं भावबोधकः ॥५८

प्रादात्तस्मै वदान्या सा यद्यन्मनसि कांक्षितम।
वरं वरेश्वरी साक्षात्पुनरुवाच साहितम ॥५९॥

अन्वयः--देवशिरोमणिः स शिवः अपि प्रसन्न वदनां तां श्री जानकीं दृष्ट्वा भावबोधकं आत्मीयं रहस्यं वरं याचे ॥५८॥ वदान्या सा तस्मै शिवाय यद्यन्ममसि कांक्षितं तत्तद्वरं प्रादात् पुनः स साक्षात् वरेश्वरी तं शिवं उवाच ॥५९॥ अनुवाद--देव शिरोमणि श्री शिव जी ने भी प्रसन्नवदना उन श्री वैदेही को देखकर अपने भावबोधक रहस्य (एकान्तिक उपासना) का वरदान माँगा ॥५८॥ परम उदार उन श्री जानकी जू ने शिव जी का जो जो भी मनोभिलाषित (मन का मनोरथ) था, वह वह वर-देकर, साक्षात् वरेश्वरी श्री राजकिशोरी जू आगे बोलीं ॥५९॥ देवाधि देव ने इस प्रकार, उनको प्रसन्नमुख अवलोका। तब माँग लिया भावानुसार, एकान्तिक मन न रहा रोका॥ साक्षात् वरेश्वरि ने शिवको, उनका मनवांछित दान दिया। औदार्यमयी ने फिर आगे कहते ऐसा सन्मान किया॥ विशेष--छन्द संख्या ५९ में श्री राजकिशोरी जू ने श्री शिव जी को अभीष्ट तो प्रदान किया ही अब आगे स्वेच्छा से वरदान दे रही हैं ॥५८-५९॥

Scanned by CamScanner

अयं पवित्रमौलिर्मे स्तवराजः त्वयाशिव । प्रकाशितोति गोप्योपि मत्प्रसादात्सुरोत्तम॥
यः पठेदिदमग्रे मे पूजाकाले प्रयत्नतः । तस्ये हा मुत्र किञ्चिन्न वस्तुस्याद्दृगगोचरम्॥

अन्वयः--हे सुरोत्तम ! हे शिव ! पवित्र मौलिः अतिगोप्योपि यं मे स्तवराजः मत्प्रसादात् त्वया प्रकाशितः ॥६०॥ पूजा काले यः पुरुषः मे अग्रे इदं स्तवराजं प्रयत्नतः प्रठेत् तस्य अमुत्र च दृगगोचर किञ्चित् वस्तु न ॥६१॥ अनुवाद--हे सुरोत्तम शिव ! परम पवित्र, परमगोप्य, मेरा यह स्तवराज मेरे प्रसाद से आपके द्वारा प्रकाशित हुआ ॥६०॥ पूजा काल में जो व्यक्ति मेरे आगे इस स्तवराज का प्रयत्न पूर्वक पाठ करेगा । उसे इस लोक और परलोक में कोई भी वस्तु अदृगगोचरम् अर्थात् अप्राप्य नहीं होगी ॥६१॥ पावन से पावनतम मेरा, अतिगोप्य सुस्तवराज तहाँ । मेरे प्रसाद से व्यक्त हुआ, भवदीय सु मुख से मंजु यहाँ ॥ पूजन वेला में कर प्रयत्न, जो सन्तत इसका पाठ करे । लौकिक परलौकिक ज्ञान सभी, उसके दृग मानस मध्य भरे ॥ विशेष--उपर्युक्त फलश्रुतिनिष्काम भाव से पाठ करने की कही गई ॥६०-६१॥

धनं धान्यं यशः पुत्रानैश्वर्यमति मानुषम । प्राप्येहामोदते भूयो मत्पदं तद्व्रजेत्सह ॥
यद्यल्लोकोत्तरं वस्तु त्रिषुलोकेषु दृश्यते । तत्सर्वमस्य पाठेन प्राप्नुयाद्भुवि मानवः ॥

अन्वयः--धनं धान्यं यशः पुत्रान् अतिमानुष ऐश्वर्यं इह संसारे प्राप्य मोदते, भूयः स भक्तः हर्षेण तत् मत्पदं व्रजेत ॥६२॥ त्रिषुलोकेषु यत् यत् लोकोत्तरं वस्तु दृश्यते, तत्सर्वं अस्य पाठेन भुवि मानवः प्राप्नुयात् ॥६३॥ अनुवाद—इस स्तवराज का पाठ-कर्ता भक्त, धन धान्य यश पुत्र एवं अतिमानुष ऐश्वर्य को इस संसार में प्राप्तकर प्रसन्न होगा, पुनः अत्यन्त हर्षपूर्वक मेरे उस परमपद को प्राप्त होगा ॥६२॥ तीनों में जो जो भी लोकोत्तर वस्तुयें देखने में आती हैं, वे सब पृथ्वी में ही इसके पाठ से मनुष्य प्राप्त कर लेगा ॥६३॥ धन धान्य सुयश से पुत्रों से वह व्यक्ति पूर्ण हो जायेगा । अति मानुष भोगैश्वर्य विपुल, इस जगतीतल में पायेगा ॥ आयुष्य पूर्ण फिर होने पर, उस परमधाम को जाता है । जिस पद को पाकर फिर कोई, इस भू पर लौट न आता है ॥६२॥ तीनों लोकों में जो जो भी, लोकोत्तर वस्तु दृष्टि आती। देखी या सुनी गई जग की, जो भी उसके मन को भाती ॥ विधि पूर्वक पाठ सुकर्ता को, वे यहीं सुलभ हो जायेंगी । कृत कृत्य स्वयं हो जाने को उसको सेवा अपनायेंगी ॥६३॥ विशेष—प्रस्तुत छन्दों में इस स्तवराज के सकाम पाठ की फल श्रुति कही गई है ॥६२॥ इस छन्द से भी सकाम अनुष्ठान की फल श्रुति कही गई है ॥६३॥

इदं मे परमैकान्तं रहस्यं सुरसत्तम । न प्रकाश्यं त्वया शंभो सठायभाव द्वेषिणे ॥६४

Scanned by CamScanner

अन्वयः—हे सुरसत्तम शम्भो ! इदं मे परमैकान्तं रहस्यं, भाव द्वेषिणे शठाय त्वया न प्रकाश्यम् ॥६४॥ अनुवाद—हे देव श्रेष्ठ शिव जी ! यह मेरा परमैकान्तिक रहस्य, दूषित भाव वाले मूर्खों के समक्ष कभी प्रकाशित नहीं करेंगे। हे सुरसत्तम ! हे महाशम्भु ! यह परमैकान्त रहस्य युक्त। स्तवन न उसे व्यक्त करिये, जो हठी तथा शठ भाव युक्त ॥ विशेष—प्रस्तुत छन्द में इस स्तवराज को अनाधिकारियों के मध्य व्यक्त करने की आज्ञा नहीं है। जैसा अन्यत्र भी निर्देश है। यथा—यह न कहिय शठ ही हठशीलहिं। जो मन लाय न सुनहरि लीलहिं॥ (श्री रा०च०मा०उ०कां) ॥६४॥

भक्तिर्यस्याति देवेशे सर्वैश्वर्यै तथा मयि। गुरौ सर्वात्म भावेन विद्यते भक्तिरुत्तमा ॥
तस्मै देयं त्वया शम्भो भावनार्द्र हृदे गुरौ। सर्वभूत हितार्थाय शान्ताय सौम्य मूर्तये ॥

अन्वयः—त्वया यस्य पुरुषस्य सर्वैश्वर्यै देवेशे (श्री रामे) तथा मयि सर्वात्मभावेन भक्तिः स्यात् यस्य गुरौ उत्तमाभक्तिः विद्यते, सौम्यमूर्तये शान्ताय, सर्वभूत हितार्थाय गुरौ भावनार्द्र हृदे तस्मै देयम्। अनुवाद—जिस पुरुष की सर्वैश्वर्य सम्पन्न, देवों के स्वामी श्री राम जी में तथा मुझमें, सर्वात्म भाव से भक्ति हो, तथा जिसकी गुरु में उत्तमाभक्ति हो, उस सौम्यमूर्ति, शान्तचित्त वाले सर्वभूतों (प्राणिमात्र) के हित में परायण आचार्यभावना से प्रेमार्द्र हृदय वाले भक्त को ही आप यह स्तवराज देना। "देवेश्वर राघवेन्द्र संयुत, मुझमे हो जिनकी दृढाशक्ति। जिनको श्री गुरुपद कंजों मे निर्दम्भ सदा उत्तमाभक्ति ॥ आचार्य प्रीति से प्रेमिल उर, जो शान्त सौम्य चित वाले हों। उन सर्वभूत हित निरतों को, इसको शिव ! देने वाले हों" विशेष—इस छन्द में भी अधिकारी का निरूपण है। युगलनाम, लीला धाम के अनुरागियों को ही इस तत्त्व (श्री जानकी स्तवराज) अधिकारी स्वीकार किया गया है ॥६५-६६॥

इत्युक्त्वा भावनामूर्तिः सीता जनकनन्दिनी कृपापात्राय तस्मै सा पुनः प्रादाद्वरान्तरम्

अन्वयः—भावनामूर्तिः जनकनन्दिनी सा सीता कृपापात्राय तस्मै श्री शिवाय इत्युक्त्वा पुनः वरान्तरं प्रादात् ॥६७॥ अनुवाद—भावनामूर्ति जनकनन्दिनी श्री सीता जी ने कृपापात्र श्री शिवजी से ऐसा कहकर, पुनः वरदान दिया॥ पद्यानुवाद—भावना मूर्ति वैदेही ने श्री शिव से इतना बतलाकर, उन कृपापात्र को और और, बरदान दिया अति हर्षाकर ॥ होगये धन्य शंकर भोले, जीवन का परम लाभ पाया। मुद गये नयन वह गौर बपुष, ज्योतित अन्तर में प्रगटाया ॥ विशेष—"भावनामूर्तिः" कहकर ग्रन्थकार ने श्री राजकिशोरी जू के रसात्मकस्वरूप (पंचरसात्मक) की ओर संकेत किया। श्री शिव जो के समक्ष अब श्री सीता जी किसी विशिष्ट "सम्बन्ध" भाव की पुष्टि पूर्वक प्रतिष्टित हैं ॥६७॥

Scanned by CamScanner

मूल—सर्व दुःख प्रशमनं जानक्यास्तु प्रसादतः ॥६८॥

अन्वयः—तु जानक्याः प्रसादतः सर्वदुःख प्रशमनं अभूत ॥ अनुवाद—पुनः श्रीजानकी जी की कृपा से समस्त दुखों का शमन (नाश) हुआ।

इति श्री अगस्त संहिता अन्तर्गत परम रहस्ये श्री जानकी स्तवराजः सम्पूर्णम् ॥

❋ श्री मिथिलेशकिशोरी जू का चरम शरणागत मन्त्र ❋

कृपारूपिणि कल्याणि रामप्रिये श्री जानकि। कारुण्यपूर्णनयने दयादृष्ट्यावलोकय ॥

❋ श्री किशोरी जू का व्रत ❋

पापानां वा शुभानां वा वधार्हाणां प्लवङ्गम्।
कार्यं कारुण्यमार्येण न कश्चिन्नापराध्यति ॥

❋ श्री मैथिली शरणागति पञ्चकम् ❋

सर्वजीव शरण्ये श्रीसीते वात्सल्य सागरे। मातृमैथिलि सौलभ्ये रक्षमां शरणागतम् ॥१॥ कोटिकन्दर्प लावण्यां सौन्दर्य्यैक स्वरूपताम्। सर्वमङ्गल माङ्गल्यां भूमिजां शरणं ब्रजे ॥२॥ शरणागत दीनार्त परित्राण परायणाम्। सर्वस्यार्ति हरेऽैक धृतब्रतां शरणं ब्रजे ॥३॥ सीतां विदेह तनयां रामस्य दयितां शुभाम्। हनुमता समाश्वस्तां भूमिजां शरणं व्रजे ॥४॥ अस्मिन् कलिमला कीर्णे काले घोर भावर्णवे। प्रपन्नानां गतिर्नास्ति श्रीमद्राम प्रियां बिना ॥५॥

❋ श्री जानकी स्तवराज के पाठ का विनियोग ❋

ॐ अस्य श्री जानकीस्तवराज स्तोत्रस्य श्रीरामचन्द्र ऋषिः—
बसन्ततिलका छन्दः श्री सीता देवता श्री युगल वर कमलयोरहेतु की भक्तिः प्राप्त्यर्थे श्री जानकीस्तवराजस्तोत्र पाठे विनियोगः ॥

श्रीरामवल्लभा ध्यानम्—रामां राजीवनयनां रामवक्षस्थलालयाम्। रामाङ्कपीठे राजन्तीं वन्दे श्री रामवल्लभाम् ॥ विदेह तनयां देवी मन्दस्मित मुखाम्बुजाम्। इन्दीवर विशालाक्षीं वन्दे श्री रामवल्लभाम् ॥

❋ श्री जानकी गायत्री ❋

ॐ श्री जनकनन्दिन्यै विद्महे श्री रामवल्लभायै धीमही तन्नो सीता प्रचोदयात् ॥

टीका लेखक— "मानस केसरी" पं० श्री वाल्मीकिप्रसाद मिश्र एम० ए० एम० एड० रिसर्चस्कालर-रींवां विश्वविद्यालय-आवास – श्रीनिधिनिकुञ्ज – विराटनगर-शहडाल (म० प्र०)

Scanned by CamScanner